UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182377

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—68—11-1-68—2,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 V 86V Accession No. PG H371

Author वियोगी हरि.

Title वीरसातसई. 1944.

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक
साहित्य भवन लिमिटेड,
प्रयाग।

प्रथम संस्करण : १९२७
द्वितीय संस्करण : १९३२
तृतीय संस्करण : १९३७
चतुर्थ संस्करण : १९३८
पाँचवाँ संस्करण : १९४४

मुद्रक
गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

उत्तेजन

जाव भलैं कुरुराज पै
धारि दूत-वर वेश।
जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ
केशव ! द्रौपदि-केश॥

'वीर-सतसई' का पाँचवाँ संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है और आशा है जिस भाँति सुज्ञ पाठकों ने पूर्व संस्करण को अपनाया है उसी भाँति इसे भी अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ाएँगे।

पुरुषोत्तमदास टंडन
मंत्री
साहित्य भवन लि० प्रयाग।

विषय-सूची

पहला शतक

[पृष्ठ १ से १२ तक]

१ मंगलाचरण १
२ वीररस-प्राधान्य १
३ वीररसानन्यता १
४ शूरवीर २
५ दया-वीर ३
६ सत्य-वीर ४
७ धर्म-वीर ५
८ विरह-वीर ७
९ दान-वीर ७
१० शूर और कादर ८
११ युद्ध-वीर ८
१२ प्रकृत-वीर ९
१३ शूर-सुपूत १०
१४ क्षत्रिय-निरूपण १०
१५ मंगल प्रयाण १०
१६ पवित्र तीर्थ ११
१७ शीर्ष-दान १२

दूसरा शतक

[पृष्ठ १३ के २४ तक]

१ विजयराघव-ध्यान १३
२ कवि-कर्तव्य १४
३ वीर कवि १५
४ केसरी १७
५ वीरता और कामान्धता १८
६ वीर-बाहु १८
७ वीर-नेत्र १८
८ खड्ग १९
९ धनुष-बाण २१
१० शिशु-वीरोक्तियाँ २१
११ प्रेम और वीरत्व २२
१२ मातृ-शिक्षा २३
१३ शूर-साधन २४
१४ रण-यात्रा और ज्योतिष २४
१५ अप्रिय और प्रिय २४
१६ चित्राङ्कण २४

तीसरा शतक

[पृष्ठ २५ से ३९ तक]

१ शक्ति-स्तुति २५
२ राघव-प्रतिज्ञा २५
३ सौमित्र-प्रतिज्ञा २६
४ मारुति-प्रतिज्ञा २६
५ भीष्म-प्रतिज्ञा २६
६ अर्जुन-प्रतिज्ञा २७
७ कन्ह-प्रतिज्ञा २८

८ बादल-प्रतिज्ञा २८
९ प्रताप-प्रतिज्ञा २९
१० वीर-प्रतिज्ञा २९
११ वीर-विदा २९
१२ युद्ध-दर्शन ३०
१३ स्वदेश-परिचय ३०
१४ राजस्थान ३०
१५ चित्तौर ३१
१६ मारवाड़ ३२
१७ हल्दीघाट ३२
१८ बांधवगढ़ ३३
१९ भरतपुर-दुर्ग ३३
२० बुन्देलखण्ड ३३
२१ पराधीनता ३६
२२ स्वाधीनता ३८
२३ पराधीन और स्वाधीन ३८
२४ स्वदेश-विद्रोह ३९
२५ व्यर्थ गर्व ३९

चौथा शतक

[पृष्ठ ४० से ५५ तक]

१ मारुति-वन्दना ४०
२ लंका-युद्ध ४०
३ रुक्मिणि-हरण ४०
४ अभिमन्यु ४१
५ भीम-भीमता ४१
६ द्रोपदी-केश-कर्षण ४१
७ चाणाक्य ४२
८ चन्द्रगुप्त ४२
९ काका कन्ह ४३
१० कैमास ४३
११ चामुण्डराय ४३
१२ लंगरिराय ४४
१३ कहरकंठीर और चन्द्रपुण्डीर ४५
१४ संयोगिता ४५
१५ जयचन्द ४५
१६ आल्हा और ऊदल ४६
१७ गोरा और बादल ४६
१८ पद्मिनी-जौहर ४८
१९ महाराणा साँगा ४८
२० जयमल और पत्ता ४९
२१ महाराणा प्रताप ४९
२२ महाराणा राजसिंह ५०
२३ चूड़ावत् का प्रेमोपहार ५१
२४ छत्रपति शिवाजी ५१
२५ महाराजा छत्रसाल ५२
२६ गुरु तेग़बहादुर ५४
२७ गुरु गोविंदसिंह ५४
२८ सिंह-शावक-बलिदान ५५
२९ भाई बन्दा ५५

पाँचवाँ शतक

[पृष्ठ ५६ से ६९ तक]

१	शिव-वन्दना	५६
२	दुर्गादास राठौर	५६
३	धुरमङ्गद	५६
४	लोकमान्य तिलक	५७
५	देशबन्धु दास	५८
६	आर्य देवियाँ	५८
७	कर्मादेवी	५८
८	वीरा	५८
९	पन्ना धाय	५९
१०	दुर्गावती	५९
११	चाँदबीबी	६०
१२	नीलदेवी	६०
१३	लक्ष्मीबाई	६१
१४	सिंह-बधू	६२
१५	सतीत्व-रक्षा	६२
१६	सती-प्रताप	६२
१७	दृढ़ता	६२
१८	शिकारी	६२
१९	वीरता और सुकुमारता	६३
२०	वीरता और विलासिता	६५
२१	कवि-पतन	६७
२२	व्यर्थ चेष्टा	६८
२३	अनहोनी	६८
२४	भारत-पताका	६९

छठा शतक

[पृष्ठ ७० से ८० तक]

१	नाद-वन्दना	७०
२	वे और ये	७०
३	कितना भारी अन्तर !	७०
४	निर्जीव राजपूत	७१
५	धिक्कार	७१
६	आज कहाँ	७२
७	परशुराम-स्मरण	७३
८	भावी इतिहास	७३
९	व्यर्थ युद्ध	७३
१०	फूट	७४
११	विजया दशमी	७५
१२	अब समय कहाँ !	७५
१३	गीता-रहस्य	७५
१४	अयोग्य नरेश	७५
१५	गो-नाश	७६
१६	क्या से क्या !	७७
१७	जगत् का अमिथ्यात्व	७७
१८	कादर साधु-सन्त	७७
१९	त्याग और आत्मानुभूति	७८
२०	अछूत	७८
२१	मङ्गला और अमङ्गला	७९
२२	बाल-विधवा	७९
२३	श्वेत और श्याम	७९

२४ दीन और दीन-
बन्धु-शरण ८०
२५ ऐसा क्यों ! ८०
२६ निवेदन ८०

सातवाँ शतक

[पृष्ठ ८१ से ११२ तक]

१ केसरी वन्दना ८१
२ विविध ८१

श्रीहरिः

वीर-सतसई

पहला शतक

मंगलाचरण

जयतु कंस-करि-केहरी, मधु-रिपु, केशी-काल ।
कालिय-मद-मर्द्दन, हरे, केशव, कृष्ण कृपाल ॥१॥
गिरिवरु जापै धारिकैं राखी ब्रज-जन-लाज ।
ताही छिंगुनी कौ हमैं बल-बानो यदुराज ॥२॥
काटौ कठिन कलेस मो मोह-मार-मद वक्र ।
मथन-मत्त-शिशुपाल-करि केहरि केशव-चक्र ॥३॥
रह्यौ उरझि रथ-चक्र जो धावत भीषम-ओर ।
कब गहिहौं रणछोर के वा पटुका कौ छोर ॥४॥

वीररस-प्राधान्य

आदि, मध्य, अवसानहूँ जामें उदित उछाह ।
सुरस वीर इकरस सदा, सुभग, सर्वरस-नाह ॥५॥
परिणामहुँ जो देतु है लोकोत्तर आनन्द ।
सुरस वीर रस-राज सो, सहित-उछाह अमन्द ॥६॥
वीर-स्थायीभावसों सरस सर्वरस आहिं ।
नीकेहूँ फीके सबै बिनु जाके जग-माहिं ॥७॥

वीररसानन्यता

छाँड़ि वीररस अब हमैं नहि भावत रस आन ।
सूझत सावन-आँधरेहिं हरो-हरो हि जहान ॥८॥

री रसना ! बस ना कछू, अब तोपै रस-तीर ।
चाखति सरस सिंगार तजि क्यों नीरस रस वीर ? ॥९॥
कहा करौं माधुर्य लै मृदुल मंजु बिनु ओज ।
दिपैं न ज्योति-विकास-बिनु सुन्दर नैन-सरोज ॥१०॥

शूरवीर

खंड-खंड ह्वै जाय बरु, देत न पाछें पैंड़ ।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़त मेंड़ ॥११॥
सहजसूर रण-चूर-उर चाहिय चातक-चाह[1] ।
चाहिय हारिल हठ[2] वहै, चाहिय सती-उमाह ॥१२॥
खल-खंडन, मंडन-सुजन, सरल, सुहृद, सविवेक ।
गुण गँभीर, रण-सूरमा मिलत लाख महँ एक ॥१३॥
खल-घालक, पालक-सुजन, सुहृद, सदय, गंभीर ।
कहूँ एक सत लाख में 'प्रकृतसूर' रणधीर ॥१४॥
मुँह माँगे रण-सूरमा देत दान परहेत ।
सीस-दानहूँ देत पै पीठि-दान नहिं देत ॥१५॥
कहत महादानी उन्हैं चाटुकार मतिकूर ।
पीठिहुँ कौ नहिं देत जे कृपण दान रण-सूर ॥१६॥

---

[1] रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग ।
'तुलसी' चातक-प्रेम कौ नितनूतन रुचि-रंग ॥
'तुलसी' चातक देत सिख सुतहिं बार ही बार ।
तात न तर्पन कीजिये बिना बारि-धर-धार ॥
—तुलसीदास

[2] गही टेक छूटै नहीं, कोटिन करौ उपाय ।
हारिल धर पग ना धरै, उड़त फिरत मरि जाय ॥
—अज्ञात कवि

कहत कौन रण में तुम्हें धीर बीर सरदार ।
लखि रिपु बिनु हथयार जो देत डार हथयार ॥१७॥
आज कहूँ तौ कालिह कहुँ, नाहिं एक विश्राम ।
करत सिंह सम सूरमा ठौर ठौर निज ठाम ॥१८॥
तंत न तोरत अंतलौं, बचन निबाहत सूर ।
कहा प्रतिज्ञा पालिहैं कपटी कादर कूर ॥१९॥
बचन-सूर केते यहाँ, करतब-कोरे कूर ।
साँचो यो कहुँ लाख में लख्यौ एक रण-सूर ॥२०॥

दया-वीर

किधौं त्याग-गिरि-शृंग, कै भाव-जाह्नवी-कूल ।
किधौं करुण-रस-सिंधु यह दया-बीर मुद्-मूल ॥२१॥
दया-धर्म जान्यौ तुहीं, सब धर्मनु कौ सार ।
नृप शिबि ! तेरे दान पै बलि, हूँ बलि सौ बार ॥२२॥
तूँहीं या नर-देह कौ, बलि पारखी अनूप ।
दया-खड्ग-मरमी तुहीं, दया सूर शिबि भूप ! ॥२३॥
दल्यौ अहिंसा-अस्त्र लै दनुज-दुःख करि युद्ध ।
अजय-मोह-गज-केसरी, जयतु तथागत बुद्ध ॥२४॥
रण-थल मूर्छित स्वामि के लीन्हें प्राण बचाय ।
गीधनु निज तनु-माँसु दै, धन्य संयमाराय[1] ॥२५॥

---

[1]संयमराय महाराज पृथ्वीराज का एक शूर सामंत था । एक बार युद्ध-स्थल पर महाराज पृथ्वीराज घोड़े पर से मूर्छित हो गिर पड़े । पास ही संयमराय भी आहत पड़ा था । यह समझ कर, कि महाराज मर गये हैं, गीध उनपर मँडराने लगे । एक-दो ने चोंच भी चला दी । संयमराय से यह न देखा गया । उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका । उधर ज़रा भी देर करता है, तो गीध महाराज को खाये जाते हैं ।

फैंकि-फैंकि निज माँस लिय संभरि-राय[१] बचाय ।
है तूँ शिबि तें घटि कहा, सुभट संयमाराय ! ॥२६॥

सत्य-वीर

सुन्दर सत्य-सरोज सुचि बिगस्यौ धर्म-तड़ाग ।
सुरभित चहुँ हरिचंद कौ जुग-जुग पुन्य-पराग ॥२७॥
मृतरोहित[२] पट-दान लै धार्‌यौ धर्म श्रमन्द ।
खड्ग-धार-ब्रत-धीर, धनि सत्य-बीर हरिचन्द ॥२८॥
फूँकन देत न मृत सुवन, माँगत तिय-तनु-चीर ।
निरखि नृपति-सत-धर्म-धृति, धृतिहूँ भई अधीर ॥२९॥
पद्मा-पति-पटपीत क्यों खस्यौ नीर-निधि-तीर ? ।
पतिहिं फारि शैब्या दियौ निज-अँग-आधो चीर ॥३०॥
बेंचि प्रियै, प्रिय पूतहूँ भयौ डोम-गृह-दास ।
सत्यसंध हरिचंद ! तूँ सहज सुसत्य-प्रकास[३] ॥३१॥

सामन्त ने अपने शरीर से मांस काट-काटकर फेंकना शुरू कर दिया। गीधों को और क्या चाहिए ? आनन्द से मांस खाने लगे। थोड़ी देर बाद महाराज होश में आये। आँख खोलते ही स्वामि-भक्त संयमराय की यह बलि-लीला देखी। पर, वहाँ तो सामन्त मरण-प्राय हो गया था। महाराज उसकी स्वामि-भक्ति देखकर गद्‌गद् हो गये। किसी तरह उठकर गीधों को भगाने लगे, पर सामन्त तो स्वर्ग को सिधार चुका था।

[१]महाराज पृथ्वीराज ।

[२]रोहिताश्व ।

[३]बेंचि देह दारा सुवन, होय दासहूँ मन्द ।
रखिहै निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जौ न जन्म हरिचन्द कौ होतो या जग माँह ।
जुग-जुग रहति असत्य की अमिट अँधेरी छाँह ॥३२॥
इत गाँधी, उत सत्य दोउ मिले परस्पर चाहि ।
यह छाँड़त नहिं ताहिं, त्यौं वह छाँड़त नहिं याहि ॥३३॥
धनि, तेरी तप-धीरता धनि, गुण-गण-गंभीर !
या कलि में गाँधी ! तुहीं इक सत्याग्रह-बीर ॥३४॥
नहि बिचल्यौ सतपंथ तें सहि असह्य दुख-द्वंद ।
कलि में गाँधी-रूप ह्वै पुनि प्रगट्यौ हरिचन्द ॥३५॥

धर्म-वीर

धन्य ओरछो, जहँ भयौ धर्म-बीर हरदौल[1] ।
दिये प्राण सत-धर्म पै पालि बीर-ब्रत नौल ॥३६॥

---

[1] बुन्देलखण्ड में ओड़छा एक पुराना राज्य है । प्रतापी बुन्देलों का सब से बड़ा और प्रतिष्ठित राज्य यही है । महाराज मधुकरशाह के पुत्र ओड़छाधीश जुझारसिंह प्रायः दिल्ली में रहा करते थे । राज्य-प्रबन्ध का भार, महाराज की अनुपस्थिति में, उनके भाई कुमार हरदौल के सिर पर रहता था । राज्य के अधिकारी न्यायशील कुमार पर जला करते और उनके हाथ से राज्य-प्रबन्ध छीनने की ताक में रहते । राजकुमार पर राजमहिषी का पुत्रवत् वात्सल्य-स्नेह था । कुमार भी उन्हें मातृवत् मानते थे । देवर-भौजाई का यह पवित्र सम्बन्ध दुष्ट ईर्ष्यालु कर्मचारियों से न देखा गया । षड़यंत्र रचकर उन्होंने महाराज को लिखा, कि कुमार और महारानी के बीच बुरा सम्बन्ध है । राजा के शरीर में मानों आग लग गई । पत्नी के सतीत्व पर उन्हें सन्देह हो गया । एक दिन रानी से, महल में जाकर, "बोले, यदि तुम दोनों देवर-भौजाई में विशुद्ध प्रेम है, तो अपने हाथ से हरदौल को विष दे दो ।"

धर्मबीर हरदौलजू ! अजहुँ तुम्हारे गीत ।
इत घर-घर तिय गावतीं समुझि सनातन रीत ॥३७॥
हँसत-हँसत निज धर्म पै दियौ जु सीस चढ़ाय ।
धर्म-समर में मरि भयौ अमर हकीकतराय ॥३८॥
दयानंद ! आरज-पथिक[1] ! यति-वर श्रद्धानंद[2] !
जगिहै तुम्हरे रुधिर तें जुग-जुग-धर्म अमंद ॥३९॥

राजमहिषी ने प्राणान्त पीड़ा का अनुभव करते हुए भी धर्मरक्षणार्थ पति-देव की बात मान ली। कुमार को मरण-निमन्त्रण दिया गया। भौजाई अपने पुत्रवत् देवर को डबडबाती आँखों से निहारती हुई परोसने लगी। पहले तो छिपाया पर कुमार के बहुत आग्रह करने पर रानी को सारा रहस्य खोलना ही पड़ा। हरदौल ने हँसकर कहा, "माता आप क्यों दुःख करती हैं ? यदि मेरी हत्या से पितृ-तुल्य पूज्य भ्राता का सन्देह दूर होता है, आपके सतीत्व की परीक्षा और मेरे धर्म की रक्षा होती है, तो मेरा मरण धन्य है !" यह कहकर रानी के हाथ से विष-मिश्रित दूध छीनकर धर्म-बीर हरदौल हँसते-हँसते पी गये, और श्रीरामचन्द्रजी के मन्दिर के सामने एक चौकी पर बैठकर ध्यान करते हुए उन्होंने स्वर्गारोहण किया। हरदौल इस धर्म-बलि के पश्चात् बहुत प्रसिद्ध हो गये। समस्त बुन्देलखंड में उनके नाम के चौतरे अद्यापि बने हुए हैं। आज भी बुन्देलखंड में प्रत्येक मांगलिक अवसर पर विघ्न-बाधा-निवारणार्थ पहले 'हरदौल लाला' के ही गीत गाये जाते हैं।

[1] आर्य मुसाफिर पंडित लेखराम, जिन्हें एक क्रूर-हृदय मुसलमान ने छुरी भोंक कर मार डाला था।

[2] धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द, जिन्हें दिल्ली के एक धर्मोन्मत्त अब्दुर-रसीद नामक व्यक्ति ने पिस्तौल चलाकर मारा था।

विरह-वीर[1]

तजि सरबस रस-बस कियौ जिन्ह जग-गुरु गोपाल ।
भाव-भौन-धुज धन्य वै बिरह-बीर ब्रज-बाल ॥४०॥
साध्यौ सहज सुप्रेम-ब्रत चढ़ि खाँड़े की धार ।
बिरह-बीर ब्रज-बाल हीं रसिक-मेंड़-रखबार[2] ॥४१॥
धन्य, बीर ब्रज-गोपिका तजी न रस की मेंड़ ।
हेत-खेत तें अंतलौं दियौ न पाछें पेंड़ ॥४२॥

दान-वीर

किधौं उच्च हिम-श्रृंग-वर, किधौं जलधि गंभीर ।
किधौं अटल ध्रुव-धाम, कै दान-बीर मति-धीर ॥४३॥
सुरतरु लै कीजै कहा, अरु चिन्तामणि-ढेरु ।
इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु ॥४४॥
चिंतामणि सौ लख कहा, कोटिन कनक-पहाड़ ।
त्रिभुवन माँहि सराहियै ऋषि दधीचि कौ हाड़ ॥४५॥

---

[1]सम्मान्य साहित्यिकों ने इस नाम का वीर-विभागों में कोई विभाग नहीं किया है। पर वीररस का स्थायी भाव 'उत्साह' विशुद्ध विरह में, अच्छी मात्रा में, पाया जाता है। इसीसे हमने अद्वितीय विरहिणी ब्रजांगनाओं को 'विरह-वीर' नाम के नये वीर-विभाग में स्थान देने की धृष्टता की है।

[2]गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
जिन तृन सम कुल-लाज-निगड़ सब तोर्‌यौ हरि-रस-माहीं ॥
जिन निजबस कीने नँदनंदन बिहरी दै गलबाहीं।
सब संतन के सीस रहौ उन चरन-छत्र की छाहीं ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

शूर और कादर

सदय, विवेकी, सत्यब्रत, सुहृद लेखियतु शूर ।
अविवेकी, क्रोधी, कुटिल, कादर कहियतु क्रूर ॥४६॥
कूकर उदर खलायकैं, घर-घर चाटत चून ।
रँगे रहत सदखून सों नित नाहर-नाखून ॥४७॥
शूर-चाह अनचाहहूँ देखिय अगम अथाह ।
कहा क्रूर-कादरनु की चाह और अनचाह ॥४८॥
करि कादर सों मित्रता कहा सारिहौ, मीत !
शत्रु ताहुँ रण-शूर प्रति मङ्गल-मूर्ति पुनीत ॥४९॥
कहत कौन कायर तुम्हैं, बल-सायर ! रण माहिं ।
भभरि भाजिबो पीठ दै सब के बस कौ नाहिं ॥५०॥
मति मन-मानिक सौंपियौ, कुटिल कादरनु हाथ ।
हैं वै ही सत जौहरी, नहिं जिन धर पै माथ ॥५१॥
कादर बीरनु संग मिलि, भलैं अलापहि राग ।
छिपत न अन्त बसन्त में, कैसेहुँ कोयल काग ॥५२॥
बृथा उभय-निरधार में बिनत-उधेरत बेद ।
खुलि जैहै वा दिन सबै, नकल-असल कौ भेद ॥५३॥

युद्ध-वीर

केसरिया बागो पहिरि, कर कङ्कण, उर माल ।
रण-दूलह ! बरि लाइयौ दुलहिन बिजय-सुबाल ॥५४॥
औघट घाट कृपाण कौ समर धार बिनु पार ।
सनमुख जे उतरे तरे, परे बिमुख मँझधार[1] ॥५५॥

---

[1] तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग ।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अङ्ग ॥

—बिहारी

पैरि पार असि धार कै नाखि युद्ध-नद-भीर ।
भेदि भानु-मंडलहिं अब चल्यौ कहाँ रण धीर ? ॥५६॥
दीठि-बिमुख अति ढीठ वै गिनत न ईठ-अनीठ ।
घालत दै-दै पीठ सर तानि-तानि सर पीठ ॥५७॥
धनि धनि, सो सुकृती व्रती, सूर-सूर, सतसंध ।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै खेलत जासु कबंध ॥५८॥
प्रतिपालक निज पैज के, खल-घालक रिपु-जैत ।
बल-बाँके बानैतहीं होत बिसद बिरुदैत ॥५९॥
लरत काल सौं लाख में कोउ माई कौ लाल ।
कहु, केते करबाल कौं करत कंठ-कलमाल ॥६०॥
कहाँ सूर समरत्थ, जो समर-दान बढ़ि लेत ।
कौन काल-करबालकौं किलकि कलेऊ देत ॥६१॥
धन्य, भीम ! रण-धीर तूँ, धरि अरि-छाती पाव ।
भरि अंजुरिनि शोणितु पियौ, इन मूँछनि दै ताव ॥६२॥
धन्य, कर्ण ! रिपु-रक्त सौं दियौ पूरि रण-कुंड ।
करि कंदुक अति चाव सौं, उछरि उछारे मुंड ॥६३॥
सहज बजावन गाल त्यौं, सहज फुलावन गाल ।
काल-गाल में रिपु दलै कठिन गेरिबो हाल ॥६४॥
प्राण हथेरी पर धरैं, किये ओज-मद-पान ।
तबर-तीर-तरबार लै चले जुझिबे ज्वान ॥६५॥
रणसुभट्ट वै भुट्ट-लौं गहि असि कट्टत मुंड ।
उठि कबंध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुंड ॥६६॥

प्रकृत-वीर

प्रकृत वीर कौ अंतहूँ परत मन्द नहिं तेज ।
नहिं चाहत चन्दन चिता भीष्म छाँड़ि सर-सेज ॥६७॥

औसरु आवत प्रान पै खेलि जाय गहि टेक ।
लाखनु बीच सराहियै प्रकृत वीर सो एक ॥६८॥
सुमृदु सिरीष-प्रसूनतें कठिन बज्रतें होय ।
प्रकृत वीर-वर हीय कौ चित्र न खींच्यौ कोय ॥६९॥

शूर-सुपूत

सीस हथेरी पर धरें, ठोंकत भुज मजबूत ।
छिति, छत्रानी-गर्भ तें, जनमत सूर सुपूत ॥७०॥
कादर भये न सूर-सुत, करि देख्यौ निरधार ।
नहि सिंहिनि के गर्भ तें उपजे कबहुँ सियार ॥७१॥
सूर-सुतहिं जग जन्म-हीं सहज 'जंग-जागीर' ।
'समर-मरण-मँसब' मिल्यौ, अरु खिताब 'रणधीर' ॥७२॥

क्षत्रिय-निरूपण

'क्षत्रिय-क्षत्रिय' कहे तें, क्षत्रिय होय न कोय ।
सीस चढ़ावे खड्ग पै क्षत्रिय सोई होय ॥७३॥
लावै बाजी प्राण की, चढ़ि कृपाण की धार ।
सोई क्षत्रिय-धर्म की मेंड़ रखावनहार ॥७४॥
जोरि. नाम सँग 'सिंह' पदु, कियौ सिंह बदनाम ।
ह्वैहैं क्योंकरि सिंह यौं, करि शृगाल के काम ॥७५॥

मङ्गल प्रयाण

पारथ-सारथि कौ हियें रहौ खचित वह ध्यान ।
हँसत हँसत बस बीर-लौं करियौ प्रान, पयान ॥७६॥
वह दिन, वह छिन, वह घरी, पुनि-पुनि आवति नाहिं ।
हिलुरि-हिलुरि जब हंस ये समर माहिं अवगाहिं ॥७७॥
दुवन-दर्प दरि, बिदरि, अरि, राखि टेक-अभिमान ।
निकसत हँसि घमसान में बड़भागिनु के प्रान ॥७८॥

लोहित-लथपथ देखिकैं, खंड-खंड तन-त्रान ।
निकसत हुलसत युद्ध में बड़भागिनु के प्रान ॥७९॥
कादर जीवित हीं मरत दिन में बार हजार ।
प्रान-पखेरू बीर के उड़त एक ही बार ॥८०॥
स्वान-मीच मरिहै कहूँ, धिक, रण-कादर नीच !
पुण्य-प्रतापनु पाइयतु सुद्ध युद्ध-थल-मीच ॥८१॥

पवित्र तीर्थ

अरे, फिरत कत, बावरे ! भटकत तीरथ भूरि ।
अजहुँ न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि ॥८२॥
बसत सदा ता भूमि पै तीरथ लाख-करोर ।
लरत-मरत जहँ बाँकुरे बिरुझि बीर बरजोर ॥८३॥
जगी जोति जहँ जूझ की, खगी खड्ग खुलि झूमि ।
रँगी रुधिर सों धूरि, सो धन्य धन्य रण-भूमि ॥८४॥
तहँ पुष्कर तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ तहँ याग ।
उठ्यौ सुबीर-कबंध जहँ, तहईं पुण्य प्रयाग ॥८५॥
संगर सोहैं सूर जहँ भये फिरत चकचूरि ।
बड़भागनु तें मिलति वा रण-आँगन की धूरि ॥८६॥
कै कृपाण की धार, कै अनल-कुंड कौ ठाट ।
येही बीर-बधून के, द्वै अन्हान के घाट ॥८७॥
अनल कुंड, असि-धार, कै रकत-रँग्यौ रण-खेत ।
त्रय तीरथ तारण-तरण क्षिति, क्षत्रिय-त्रिय-हेत ॥८८॥
रण-बेला सतपर्व-सी अभिमत-फल-दातार ।
सहस-जाह्नवी-धार-लौं सुभट-हेतु असि-धार ॥८९॥
सुभट-सीस-सोनित-सनी समर-भूमि ! धनि-धन्य !
नहिं तो-सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य ॥९०॥

नमो नमो कुरु-खेत ! तुव महिमा अकथ अनूप ।
कण-कण तेरो लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥९१॥

शीर्ष-दान

जे जन लोभी सीस के, ते अधीन दिन-दीन ।
सीस चढ़ायें बिनु भयौ, कहौ कौन स्वाधीन ? ॥९२॥
एक ओर 'स्वाधीनता' 'सीस' दूसरी ओर ।
जो दो में भावै तुम्हैं, भरि सो लेहु अँकोर ॥९३॥
कोटिन जतन करौ चहै, रचि-पचि लाख बरीस ।
मिली न कहुँ स्वाधीनता, बिनु सौंपे निज सीस ॥९४॥
चाहौ जो स्वाधीनता, सुनौ मन्त्र मन लाय ।
बलि-बेदी पै निज करनि, निज सिर देहु चढ़ाय ॥९५॥
दियौ दान जिन सीस कौ, ते न बहुत ब्रत-बीर ।
मुहँ लगाय केते, कहौ, पियत सिंहिनी-छीर ? ॥९६॥
कोटिनु मधि कोऊ कहूँ कुल-दीपक इक होत ।
नेह-सहित निज सीस दै दस दिसि करत उदोत ॥९७॥
सौंप्यौ स्वामिहिँ कोउ जन, कोउ धन, हय, गय ठौर ।
पै वह सहजैं सौंपि सिर, भयौ सबनु सिरमौर ॥९८॥
देत अजा-बलि देव कों अधम अधर्मी आज ।
धन्य धन्य, जिन सीस निज, दियौ ईस-बलि-काज ॥९९॥
किम्मत हिम्मत की नहीं, नहिँ बलबीरज-तोल ।
आँक्यो गयो न आजुलों बीर-मौलि कौ मोल ॥१००॥

---

*

*

दूसरा शतक

विजयराघव-ध्यान

मौलि जटा, धनु-बान कर, मुख प्रसेदु, अँग श्रान्त ।
बसौ विजयराघव हियें, किये रूप रण क्रान्त[1] ॥१॥
कलित कंध धनु, तून कटि, कर सर सरयू-तीर ।
सँग सखानि बानिक यहै, बसौ दृगनि रघुबीर[2] ॥२॥

---

[1] सिर जटा-मुकुट प्रसून बिच-बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उड़गन भ्राजहीं ॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर-कन तन अति बने ।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं विपुल सुख आपने ॥
—तुलसी

[2] निम्नलिखित दोहे के साँचे में—
सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।
या बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥
यह ध्यान तो गोसाईंजी से ही अंकित करते बना है—
बिहरत अवध-बीथिन राम ।
संग अनुज अनेक सिसु, नवनील नीरद स्याम ॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पद-त्रान ।
पीतपट कटि तूनबर, कर ललित लघु धनु-बान ॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि ।
बसत तुलसीदास-उर अवधेस के सुत चारि ॥
—तुलसी

जटा-मुकुट सिर, चाप कर, कलित कलेवर स्याम ।
दसमुख-करि-केहरि रमौ दृगनि राम अभिराम ॥३॥
रहौ पूरि स्रवननि सदा, त्रिजग-प्रकंपनहार ।
बंक - लंक - धर - संक - कर जुगल - चाप - टंकार ॥४॥

कवि-कर्त्तव्य

लै बल-विक्रम-बीन, कवि ! किन छेड़त वह तान ।
उठैं डोलि जेहिं सुनत हीं धरा, मेरु, ससि, भान ॥५॥
लै निज तंत्री छेड़ि दै, कवि ! वह राग अभंग ।
उठै धरा तें ओज की नभलगि तुंग तरंग[1] ॥६॥

वीर कवि

हिन्दू कवि, हिंदुवान-कवि, हिन्दी-कवि रसकन्द ।
सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि, धन्य-धन्य कवि चन्द ॥७॥

---

[1]कवि ! तूँ क्यों न बीर रसु गावै ?
उथल-पुथल करि अखिल लोक में व्यापक गान सुनावै ?
जो या मद-बिभोर बानी बल-बिक्रम-सर अन्हवावै ।
तौ तूँ अनायासहीं कोटिन तीरथ कौ फलु पावै ॥
कब तें या कल कुसुम-कुञ्ज में रमि रमनी-छवि ध्यावै ?
कंकण-किंकिणि-झनक सुनत जहँ, तहँ प्रमत्त ह्वै धावै ॥
अजहूँ किन गम्भीर नाद कै शक्ति-मूर्ति प्रगटावै ?
किन नख-सिख-कुच-कटि-वर्णन की कारिख धोय मिटावै ?
शुचि पत्रावलि मलिन मसी सों काहे, निलज ! नसावै !
ओज-जान्हवी-जल तें ताकौ किन अँगराग करावै ?
लोकप्रकंपन शब्द-शक्ति सों जो पै जगत जगावै ।
कवि ! तबहीं तूँ या बसुधा पै, साँचो सुकवि कहावै ॥
—वीर-वाणी

भयौ उदित हिंदुवान-नभ चारुचन्द कविचन्द ।
रही बगरि चहुँ जोन्ह-सी रचना रुचिर अमन्द ॥८॥
रचि रासो[१] रस-रासि, अति उत्कृष्ट काव्य सुछन्द ।
पृथीराज चौहान-जसु अजर अमर किय चन्द ॥९॥
फिरदौसी[२] किन जाय दुरि देखतहीं कविचन्द ।
जासु प्रभा लखि परि गयौ कवि होमर[३] हूँ मन्द ॥१०॥
अब नख सिख-सिंगार के पढ़त कबित कमनीय ।
सरिस लाल भूषण कहाँ सुकवि आज जातीय ॥११॥
सिवा-सुजस-सरसिज-सुरस-मधुकर मत्त अनन्य ।
रस-भूषण-भूषण, सुकवि-भूषण, भूषण धन्य ॥१२॥
कविभूषण सों सरि, कहौ, करिहै को मति-अंध ।
जासु पालकी कहँ दियौ छत्रसालु निज कंध[४] ॥१३॥

---

[१]पृथ्वीराज-रासो ।

[२]फ़ारसी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' का रचयिता ।

[३]विश्वविख्यात 'इलियड' महाकाव्य का प्रणेता ।

[४]एक बार कविभूषण शिवाजी के पौत्र साहूजी के यहाँ भलीभाँति सम्मानित हो पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल के यहाँ आये । वहाँ भी कवि का यथेष्ट सत्कार किया गया । कवि की बिदाई करते समय महाराज ने उनकी पालकी का डंडा खुद अपने कंधे पर रख लिया । भूषण यह देखकर गद्गद हो गये । पालकी से कूदकर बोले । बस, महाराज !

राजत अखंड तेज, छाजत सुजसु, बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय-साल को ।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफ़ताप होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को ॥

रिपुगण सुनि भूषण-कवित क्यों न होहिं सर-विद्ध ।
जाको रसना पै सदा रहति चंडिका सिद्ध ॥१४॥
किधौं इन्द्र कौ बज्र, कै प्रलय-कृसानु अमन्द ।
किधौं रुद्र-रण चंड-चख कविभूषण कौ छन्द ॥१५॥
कविभूषण सिवराज की जिमि गूँथी गुण-माल ।
तिमि चम्पत-सुत कौ चरित किय चित्रित कविलाल[1] ॥१६॥
हेलाहीं कटवाय रिपु, रण-बेला ह्वै ढाल ।
रह्यो बुँदेला-बीर[2] सँग अलबेला कविलाल ॥१७॥
नितप्रति छत्र-प्रकास[3] तें सुकविलाल-कृत छन्द ।
पढ़ियौ चंपत[4] बंसधर ! तुम्हें खड्ग-सौगंद ॥१८॥

साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीनें,
भूषण भनत, ऐसो दीन-प्रतिपाल को ?
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू कों सराहौं, कै सराहौं छत्रसाल को ॥
[छत्रसाल-दशक]

[1]कविवर गोरेलाल । यह एक साथ ही महाराज का सामंत और कवि था ।

[2]महाराज छत्रसाल ।

[3]कविवर गोरेलाल का रचा हुआ एक सुन्दर वीररसात्मक काव्य । खेद है कि यह काव्य अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है । इसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने संशोधित कराके प्रकाशित किया है । हिन्दी-साहित्य में वीररस का ऐसा उत्तम ऐतिहासिक काव्य कदाचित् ही कोई और हो ।

[4]महाराज छत्रसाल के पिता चंपतराय ।

ब्रज-जाटनु[१] की रण-कथा गाय सुजान-चरित्र[२] ।
भूषण-लौं, सूदन ! तुहूँ रसना कीन्ह पवित्र ॥१९॥
कादरता-सूदन अहैं, कवि सूदन ! तुव छन्द ।
फरकत भट भुज-दंड, सुनि धरकत कादर मन्द ॥२०॥

केसरी

एकछत्र बन कौ अधिप पंचाननहीं एक ।
गज-शोणित सों आपुहीं कियौ राज-अभिषेक ॥२१॥
काँपत कोपित केहरी मुहुँ बायें बिकराल ।
रहे धँधकि अंगार, कै प्रलय काल के लाल ? ॥२२॥
छिन्न-भिन्न ह्वै उड़ति क्यों मद-भौंरनु की भीर ?
दार्‌यो कुंभ करीन्द्र कौ कहूँ केहरी बीर ॥२३॥
दंति-कुंभ-शोणित-सनी लसत सिंह-दृढ़-डाढ़ ।
मनु मंगल ससि-अंग कों दिय आलिंगन गाढ़ ॥२४॥
अहे मधुप ! गज-गंड-मद पीजौ सोच-बिचारि ।
छिनमेंही या कुंभ कों दैहै सिंह बिदारि ॥२५॥
बारबार अँगराय क्यों सिंह जँभाई लेत ?
मद-माते गज-जूथ कों पुनि-पुनि करत सचेत ॥२६॥
भाजि-भाजि, गजराय ! अब, बारि-बिहार बिहाय ।
गरभ गिराय मृगीन के, गयौ आय बनराय ॥२७॥
कमल-केलि करिनीनु संग, करत कहा, करिराज !
गिरितें गाजत गाज-लौं रह्यौ उतरि मृगराज ॥२८॥

---

[१] भरतपुर राज्य के वीर जाटों से अभिप्राय है ।

[२] सुकवि सूदन-रचित एक सुन्दर युद्ध-काव्य । इसमें भरतपुर के सुप्रसिद्ध वीर-वर महाराज सूरजमल, उपनाम सुजानसिंह, की युद्ध-गाथा ओजस्वी पद्यों में लिखी गई है ।

झपटि सिंह गज-कुंभ ज्यौं दपटि बिदार्‌यौ धाय ।
रकत-रँगीं मुकता-कनीं रहीं सुकेसर छाय ॥२९॥
पराधीन सब देखियतु, बल-बीरज तें हीन ।
या कानन में, केहरी ! इक तूँहीं स्वाधीन ॥३०॥
नहिं पावस, नहिं घन-घटा, भई किते यह घोर ?
करत मत्त मृगराज कहुँ, बिसेंबीस बन रोर ॥३१॥
यौं मति कीजौ रोर अब, घन ! केहरि-लौं आय ।
या गयन्दिनी कौ अरे ! गरभ न कहुँ गिरि जाय ॥३२॥

वीरता और कामान्धता

जहँ नृत्यति नित चंडिका तांडव-नृत्य प्रचंड ।
कुसुम-तीर तहँ काम के होत आपु सतखंड ॥३३॥
अट्टहास करि कालिका जित क्रीड़ति बिनुसंक ।
कुसुम-बान किमि बेधिहैं तित कुसुमायुध रंक ॥३४॥
जा तनु-अंबुधि में सदा खेलति अतनु तरंग ।
उमगैगी क्योंकरि, कहौ, ता मधि युद्ध-उमंग ॥३५॥

वीर-बाहु

खल-खंडन, मंडन-सुजन, अरि-बिहंड, बरिबंड ।
सोहत सिंधुर - सुंड - से सुभट-चंड - भुजदंड ॥३६॥
कटि-कटि जे रण में गिरे, करि कृपाण-ब्रत-त्राण ।
क्यों न हुलसिकैं वारिये तिन भुजानु पै प्राण ॥३७॥
बड़े-बड़े बरबाहु के नहिं केते बरिबंड ।
दुवन-दर्प पै दलत जे, ते औरै भुज-दंड ॥३८॥

वीर-नेत्र

होति लाख में एक कहुँ अग्नि-वरण वह आँख ।
देखतहीं दहि करति जो दुवन-दीह-दलु राख ॥३९॥

नयन कंज, खंजन, मधुप, मद, मृग, मीन समान ।
लोहित और अँगार पै ह्वै अनुपम उपमान[1] ॥४०॥
सुभट-नयन अंगार, पै अचरज एक लखात ।
ज्यौं-ज्यौं परत उमाह-जल, त्यौं-त्यौं धँधकत जात ॥४१॥
जाव फूटि रति-रँग-रली, अलसौहीं वह आँख ।
सहज-ओज-ज्वाला-ज्वलित चिरजीवौ जुगलाख ॥४२॥
सुरत-रंग कहँ दृगनि में, कहँ रण-ओज-उदोत ।
यातें उज्जवल होत मुख, वातें कज्जल होत ॥४३॥
युद्ध-रत्त-दृग-रक्त की कहा रक्त सँग लाग ।
लागत यातें दाग, वह मेटत हियकौ दाग ॥४४॥
सहज सूर-नैननि लख्यौ सील-ओज-संचार ।
एकैरस निबसत तहाँ पानिप और अंगार ॥४५॥
जदपि रुद्धबल-तेज कौ कियौ न प्रगटि प्रकास ।
दिपत तऊ अँखियानि ह्वै अंतर-ओज-उजास ॥४६॥

खड्ग

पर्‌यौ समुझि नहिं आजु-लौं या अचरज कौ हेतु ।
फर्‌यौ असित असि-लता तें सुजस-चारु-फल सेतु ॥४७॥
जदपि इतौ पानिप चढ्यौ, अचरज तदपि महान ।
नितप्रति प्यासी ही रही, लही न तृप्ति कृपान ॥४८॥
बसति आपु लघु म्यान में वह कृपान लघुगात ।
त्रिभुवन में न समात पै सुजस तासु अवदात ॥४९॥

---

[1] निम्नलिखित दोहे के साँचे में—

अनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान ॥

प्रलय-कारिणी तुव, छता[1] ! लपलपाति तरवार ।
खात-खात खल-सीस जो लई न अजहुँ डकार ॥५०॥
बसै जहाँ करबाल ! तू, रमै तहाँ किमि बाल ?
एकसंग निबसति कहूँ ज्वाल मालती-माल ॥५१॥
धारि सील, असि-बालिके ! अब तूँ भई सयानि ।
अरी हठीली ! कित तजी वह इठलाहट-बानि ? ॥५२॥
तड़ित और तरवार में समता किमि ठहराय ।
ज्यौंहीं यह चमकति दमकि, त्यौंहीं वह दुरि जाय ॥५३॥
लहरति, चमकति चाव सों तुव तरवार अनूप ।
धाय डसति, चौंधति चखनि, नागिनि-दामिनि-रूप ॥५४॥
वह नाँगी तरवारहूँ बनी लजीली नारि ।
नहिं खोल्यौ मुख म्यान तें, ह्वै मनु परदावारि ॥५५॥
करति मरम-तर वार जो, सोइ प्रखर तरवार ।
जानति कबहुँ कृपा न करि, कहिय कृपान करार ॥५६॥
सुभट लाल ! असि-दूतिका ठाढ़ी सुमुखि-सयानि ।
मानिनि बसुधा-बाल कौ यही गहावति पानि ॥५७॥
रमति अंत नहिं कंत तजि, कुल-कामिनि तरवारि ।
कहूँ दुहागिन होति है सती सुहागिन नारि ॥५८॥
रण-नायक-भामिनि तुहीं, कुल-कामिनि करबाल !
अंतहुँ प्रीतम-कंठ तूँ भई लपटि रति-माल ॥५९॥
सोभित नील असीन पै रुधिर-बिन्दु-कृत जाल ।
लसति तमाल-लतान पै मनहुँ बधूटी-माल ॥६०॥

[1]बुन्देलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल ।

धनुष-बाण

देखतहीं वह कुटिल धनु कुटिल सरल ह्वै जात ।
त्यौं अरि अथिर थिरात, ज्यौं बिषम बान लहरात ॥६१॥
बिसिख-भुजँग तुव फुङ्करत उड़ि-नभ लगि मँडरात ।
अरि-अपजस, तेरो सुजस सँग लपेटि लै जात ॥६२॥
छूटतहीं परचंड सर, मारतंड लौं धाय ।
भौननि प्रतिपच्छीनु के तिमिर देत चहुँ छाय ॥६३॥
इत सर सारँग पै चढ़त, चढ़ि रागत रण-राग ।
उत अरि-अँगना-अङ्ग तें उतरत सहज- सुहाग ॥६४॥
खैंचत धनु-गुण कर्ण लगि, कर्ण पार्थ-हिय-साल ।
स्वर्ण-जाल चित्रत, किधौं गुहत दामिनी-माल ॥६५॥

शिशु-वीरोक्तियाँ

वह शकुन्तला-लाड़िलो कबतें माँगत रोय ।
"खड्ग-खिलौना खेलिबे अबहिँ लाय दै मोय" ॥६६॥
गो-घातक वा बाघ की, जननि ! खैंचिहौं पूँछ ।
तीखन डाढ़ैं तोरिहौं, अरु उखारिहौं मूँछ ॥६७॥
दै तौ, मैया ! नैंक तूँ मेलो[1] तील[2]-कमान ।
चंदै भूमि गिलाउँगो[3], मालि[4] अचूक निछान[5] ॥६८॥
ऊँ ऊँ, मैं तो लैउँगो ओई तील-कमान ।
मालूँगो[6] म्लगलाज[7] मैं, घालि अचूक निछान ॥६९॥
मति दै चकली[8] तूँ हमैं, मति दै गैंद, अजान !
अम[9] तौ ओई लैयँगे लखन-लाम[10]-धनु-बान ॥७०॥

---

[1]मेरो। [2]तीर। [3]गिराऊँगो। [4]मारि। [5]निशान। [6]मारूँगो।
[7]मृगराज। [8]चकरी। [9]हम। [10]राम।

गहि पटुका बलराम कौ रह्यौ मचलि नँदलाल ।
"दाऊ ! मोय मँगाय दै छोती-छी[1] तलवाल[2]" ॥७१॥
भावत मैया ! मोय नहिं फीको चंदन भाल ।
दै लगाय तूँ बस वही नीको टीको लाल ॥७२॥
सीय-हरन लखि स्वप्न में उठ्यो कान्ह अतुराय ।
धनु मेरो, दाऊ ! कितै, दै तौ नैक उठाय ॥७३॥

प्रेम और वीरत्व

प्रेम-मरम जानैं कहा बिषयी कायर क्रूर ।
इक साँचो रणसूरहीं पहिंचानत रसमूर ॥७४॥
हित-जौहर जानै कहा यह मनोज-मद-चूर ?
परखि पारखीही सकै प्रेम-रत्न रण-सूर ॥७५॥
और बनायें बनत, पै द्वै न बनत केहुँ बार ।
मरजीवा मरमी रसिक, अरु सिर-सौंपनहार ॥७६॥
सब तौ साँचे में ढरे, ढरे न ये द्वै ढार ।
प्रेम-मेंड़-रखवार, औ सीस-चढ़ावनहार ॥७७॥
रे बिषयी ! प्रेमी बनत, नैक न लागति लाज !
केते कठिन-कपोत-ब्रत-पालनहारे आज[3] ! ॥७८॥
निर्विकार, निर्लेप, नित, निखिल-ब्रह्म-सुख-सार ।
सोइ प्रेम बिषयीनु कों भयौ आजु खेलवार[4] ॥७९॥

---

[1]छोटी-सी । [2]तलवार ।

[3]है इत लाल कपोत-ब्रत, कठिन प्रेम की चाल ।
मुख तें आह न भाखहीं, निज सुख करहिं हलाल ।
—हरिश्चन्द्र

[4]गिरि ते ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजारु ।
बहै सदा-पसु नरनु कों प्रेम-पयोधि पहारु ॥ —बिहारी

जनि गनियौ खेलवार यौं, कठिन प्रेम-असि-धार ।
चातक-मीन-कपोत-व्रत कहँ अब पालनहार ॥८०॥
मथि-मथि अच्छर-निधि मरे, कढ्यौ न कछुवै सार ।
इक प्रेमी, इक सूरमा भये उतरि भव-पार ॥८१॥
सेना-पति सत-सहसहूँ सकैं जाहिं नहिं जीति ।
ताहि स्वबस करि लेतिहै सहज प्रीति की रीति ॥८२॥
और अस्त्र केहि काम के, प्रेम-अस्त्र जो साथ !
प्रेम-रथी के हाथ हैं महारथिनु के माथ ॥८३॥
कृष्ण-प्रेम-रस-भरित, कै पूरित समर-उछाह ।
सुर-सरिताहूँतें परमपावनु अश्रु-प्रवाह ॥८४॥

मातृ-शिक्षा

क्यों न चढ़ावत सिर चढ्यौ ललन, बान धनु तानि ?
किन खेलत खिन खड्ग सों जासु खिलौहीं बानि ॥८५॥
खंड-खंड ह्वै जाव, पै धर्म न तजियौ एक ।
सपथ, लाल ! या खड्ग की, रहियौ गहि कुल-टेक ॥८६॥
कह्यौ माय, मुख चूमिकैं, कर गहाय करबाल ।
"जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल !" ॥८७॥
चूर-चूर ह्वै अंतलौं रखियौ कुल की लाज ।
जननि-दूध-पितु-खड्ग की अहै परिच्छा आज ॥८८॥
पाठ पढ़ावति मातु नित, लै उछंग निज लाल ।
"बत्स ! बीर-व्रत धारियौ, धरि पछारियौ काल" ॥८९॥
लोटि-लोटि जापै भये धूरि-धूसरित, आज ।
बत्स ! तुम्हारे हाथ है ता धरती की लाज ॥९०॥
लिखत, मिटावत, लाल ! क्यों चक्रव्यूह कौ चित्र ?
कबहुँ अघावैही नहीं, सुनि अभिमन्यु-चरित्र ! ॥९१॥

शूर-साधन

होत सूर सरनाम कै चूर-चूर निज अंग ?
पिसत-पिसत ज्यों सिला पै लावति मेंहदी रंग[1] ॥९२॥

रण-यात्रा और ज्योतिष

अब पत्रा देखत कहा, सोधत सुदिन, गँवार !
परे कूदि रण-कुंड वै, रहे तोरि गढ़-द्वार ॥९३॥
मिलत न पत्रा में सुदिन, भिरत न कादर मंद ।
नहिं सोधत रण-बाँकुरे नखत, बार, तिथि, चंद ॥९४॥
चलत कबहुँ दिन सोधि तुम, कबहूँ छींक बचाय ।
किन इन थोथे टोटकनु दई अनी बिचलाय ? ॥९५॥
सुदिन ज्योतिषी तें कहा सोधवावत रण-हेत ?
चढ़ि आये वै दुर्ग पै, तुम इत परे अचेत ॥९६॥

अप्रिय और प्रिय

गावत गावक बीन लै बिरही राग बिहाग ।
नाहिं अलापत, आजु क्यों मङ्गल मारू राग ॥९७॥
फूँकत पीं-पीं, बाँसुरी, रह्यौ न यामें स्वाद ।
है त्रिलोक में भरि गयौ संगर-संख-सुनाद ॥९८॥
लावत रँगि रँगरेज़ ! क्यों पगियाँ रंग-बिरंग ।
अबतौं, बस, भावत वहै सुन्दर रंग सुरंग ॥९९॥

चित्राङ्कण

जियत बाघ की पीठ पै धनु-धारीनु चढ़ाय ।
क्यों न, चितेरे ! चित्र तूँ उमँगि उतारत आय ? ॥१००॥

---

[1] ता हमचो हिना सूदह न गरदी तहे संग ।
हरगिज़ बक़फ़े पाये निगारे न रसी ॥ —एक फारसी कवि

अर्थात्, जब तक मेंहदी की तरह पत्थर के नीचे पिस न जाओ, हरगिज़ यार के पाँव के तलुए तक नहीं पहुँच सकते ।

तीसरा शतक

शक्ति-स्तुति

शक्ति-शक्ति, शिव-शक्ति जय, जगत-ज्योति, जगदम्ब !
आरत-भारत-आर्त्ति कौं क्यों न हरति अबिलम्ब ? ॥१॥
त्रिभुनेश्वरी, त्रयनयनि, जय, त्रिशूलिनी अम्ब ।
जन-त्रिताप-उपशमन में क्यों अब करति बिलम्ब ॥२॥
महिष-शूलिनी, शूलिनी, मौलि-मालिनी, आहि ।
जय जगदम्ब, कपालिनी, प्रणत-पालिनी, पाहि ॥३॥
प्रलय-हास जब कालिका करति स्वभाव स्वछन्द ।
दहक-दंत-दुति-दमक तें परत सूर्यशत मन्द ॥४॥
अट्टहास करि, धारि त्यौं मौलि-माल अबिलम्ब ।
आदिनटी शिव-सँग नटी प्रलय-नाट्य जग-अम्ब ॥५॥
कर्षत रवि-रथ-चक्र जो, नित नभ ताण्डव महँ ।
रहौ, अम्ब ! जन-सीस पै वहै बाहँ की छाहँ ॥६॥
या भारत-आरति हरौ सोइ शक्ति द्रुत धाय ।
जासु प्रलय-पग परतहीं शवहू शिव ह्वै जाय ॥७॥
कब कौ ठाढ्यौ पौरि पै, सुनत नाहिं कछु अम्ब !
कहौ, कहाँ तुव अंक तजि सिसुहिं आन अवलम्ब ? ॥८॥
निबलनु कौं साँसत सबल तुव देखत बसुयाम ।
कहा जानि, धार्यौ जननि ! 'महिष-मर्दिनी' नाम ?॥९॥
कलपि-कलपि भूखनि मरति तुव संतति अभिराम ।
कहा जानि धार्यौ जननि ! 'अन्नपूरणा' नाम ॥१०॥

राघव-प्रतिज्ञा

जेहिं शर मधु-कैटभ हने, किये त्रिसिर खर खीस ।
खल ! ताही तें काटिहौं भुजाबीस दससीस ॥११॥

सौमित्रि-प्रतिज्ञा

जौं न घालि घननाद कों यमपुर आजु पठाउँ ।
हौं रामानुज मुख कबौं जियत न औध दिखाउँ[1] ॥१२॥
कह्यौ कोपि सौमित्रि यौं ध्याय राम-युग-पाद ।
"कै अब मेरो बानहीं, कै तूँहीं, घननाद !" ॥१३॥

मारुति-प्रतिज्ञा

उठि ठाढ़ो ह्वैहै जबै सधनु सुमित्रा-नन्द ।
तबहिं पसीना पोंछिहौं पथ-श्रम कौ, रघुचन्द ! ॥१४॥
जौंलगि मूरि न लाउँ मैं मारुति तौलगि, तात[2] !
करि सुधि मो सिसु-केलि की मुख न खोलियौ प्रात ॥१५॥

भीष्म-प्रतिज्ञा

रहिहौं अस्त्र गहाय कैं रखि निज प्रण की लाज ।
कै अब भीषमहीं यहाँ, कै तुमहीं, यदुराज ! ॥१६॥
शरनि ढाँपि रवि-मंडलहिं, शोणित-सरित अन्हाय ।
तेरीही सौं तोहिं हरि ! रहिहौं अस्त्र गहाय ॥१७॥
तेरोही सौं, युद्ध-मधि, तेरेहीं बल आज ।
हौं शान्तनु-सुत मेटिहौं प्रण तेरो, यदुराज[3] ॥१८॥

---

[1] जौं तेहि आजु बधे बिन आवउँ । तौ रघुपति-सेवक न कहावउँ ॥
जौ सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतउँ रघुबीर-दुहाई ॥
[रामचरितमानस]

[2] सूर्य से तात्पर्य है ।

[3] आजु जौ हरिहि न शस्त्र गहाऊँ ।
तौ लाजौं गङ्गा जननी कों, सान्तनु-सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौं, कपिधुज सहित डुलाऊँ ।

इत पारथ-रथ सारथी, उत भीषम रण-धीर ।
तिलहूँ नहिं टारे टरैं, दुहूँ अप्र-प्रण-बीर ॥१६॥
मुख श्रम-सीकर, द्दग अरुण, रण-रज-रंजित केश ।
फहरत पट, गहि चक्र हरि धाये सुभट-सुवेश ॥२०॥
कच रज-रंजित, रुधिर-मिलि झलकत श्रमकण अंग ।
फहरत पट, गहि चक्र हरि धाये करि प्रण-भंग[1] ॥२१॥
जन-वत्सल पारथ-सखा, धन्य धन्य, यदुराज !
राखी निज प्रण मेंटि कैं शान्तनु-सुत की लाज ॥२२॥
प्रण कीनों बहु बीर जग, टेकहुँ गही अनेक ।
पै भीषम-व्रत आजुलौं है भीषम-व्रत एक ॥२३॥
समसरि कासों कीजियै, मिल्यौ नाहिं उपमान ।
भीषम-सो भीषम भयौ वह भीषम व्रतवान ॥२४॥

अर्जुन-प्रतिज्ञा

भानु-अस्तलौं आजु जौ बच्यौ जयद्रथ-जीव ।
चिता लाय तनु जारिहौं, तोरि तारि गांडीव ॥२५॥

इती न करौं सपथ मोहिं हरि की छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ ॥
पांडव-दल सनमुख ह्वै धाऊँ, शोणित-सरित बहाऊँ ॥
'सूरदास' रणभूमि बिजय बिन, जियत न पीठि दिखाऊँ ॥

[1]वा पटपीत की फहरान ।
कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बान ॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कचरज की लपटान ।
मानों सिंह सैल तें निकस्यो, महामत्त गज जान ॥
जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यो, मेटि वेद की कान ।
सोई 'सूर' सहाय हमारे, निकट भये हैं आन ॥

लैं न सक्यौ, हरि ! आजु जौ अधम जयद्रथ-जीव ।
तौ पारथ हौं क्लीव अब नहिं लैहौं गांडीव ॥२६॥

कन्ह-प्रतिज्ञा

'तो रक्खों ढिल्लिय तखत, भुजन ठिल्ल कनवज्ज[१] ।'
बज्ज-पैज असि कन्ह-लौं करनहार को अज्ज ? ॥२७॥

बादल-प्रतिज्ञा

जौं न स्वामि निज उद्धरौं, बद्दल नाम लजाउँ ।
पिऊँ न जल मेवाड़ कौ, जियत न मूँछ रखाउँ[२] ॥२८॥

---

[१]इन भुजन ठेलि जयचाँद-दल, तुव रक्खों ढिल्लिय तखत ॥
[पृथ्वीराज-रासो]

[२]बादशाह अलाउद्दीन के कारागार से अपने पति महाराणा भीमसी (भीमसिंह) को मुक्त कराने के लिए जब महारानी पद्मिनी अपने चचेरे भाई बादल की सहायता लेने उसके पास गई, तब उसने जो वीर प्रतिज्ञा की, उसका वर्णन महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने कैसा फड़कता हुआ किया है—

"उये अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर घटै घर आइहि राजा ॥
बरषा गए, अगस्त जौ दीठिहि। परिह पलानि तुरंगम पीठिहि ॥
बेधौं राहु, छोड़ावहुँ सूरू। रहै न दुख कर मूल-अँकूरू ॥"

अपनी माता से, युद्ध-यात्रा करते समय बादल कहता है—

"मातु, न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रनबादी ॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा। सिंघ क जाति रहै किमि छपा ॥
तौलगि गाज, न गाज सिंघेला। सौंह साह सौं जुरौं अकेला ॥
को मोहि सौंह होइ मैमंता। फारौं सूँड़, उखारौं दंता ॥
जुरौं स्वामि सँकरे जस ढारा। पेलौं जस दुरजोधन भारा ॥

इन भुजान तें बैरि-दल जौ न ठेलि लै जाउँ ।
जीवित मुख न दिखाउँ मैं, बादल नाम लजाउँ ॥२९॥

प्रताप-प्रतिज्ञा

मूँछ न तौलौं ऐंठिहौं, हौं प्रताप भुज-हीन ।
करि पायौ जौलौं न मैं गढ़ चित्तौर स्वाधीन ॥३०॥
महल नाहिं पगु धारिहौं, रहिहौं कुटी छवाय ।
हौं प्रताप जौलौं न ध्वज दई फेरि फहराय ॥३१॥

वीर-प्रतिज्ञा

हौंहूँ सिंह-कुमार, जो वह खल गज मदमंत ।
कुंभहिं नखनि बिदारिहौं, अरु उखारिहौं दंत ॥३२॥
हौंहूँ आजु अगस्त्य, जो वह अभिमान-समुद्र ।
ताहिं अँचैहौं अंजुरिनु, सहज सोखिहौं छुद्र ॥३३॥
हौंहूँ मघवा-बज्र, जो वह खल भूधर-श्रृङ्ग ।
दैहौं खेह मिलाय यौं, चूर-चूर करि अंग ॥३४॥

वीर-विदा

मिलियौ तहँ परखति, प्रिये ! मिलिहौं सरबसु बारि ।
बिसिख-हार हौं पैन्हि, तुम ज्वाल-माल उर धारि ॥३५॥
रहियौ यौंहीं भेंटिबे, प्रिये ! बढ़ायें बाहिं ।
भेदि भानु-मंडलहिं मैं मिलिहौं सुर-पुर माहिं ॥३६॥
हौं तौ, प्रिय ! प्रथमहिं चली, भलीभाँति रति लालि ।
आय भेंटियौ मोहिं उत, बेगि बीर-ब्रत पालि ॥३७॥

अंगद कोपि पाँव जस राखा । टेकौं कटक, छतीसौ लाखा ॥
हनुवंत सरिस जंग बर जोरौं । दहौं समुद्र, स्वामि-बंदि छोरौं ॥
[पदमावत]

सजनी ! पिउकों भेंटिलै भरि भुज अंतिम बार ।
हित-बगिया तें पुहुप लै करि साजन-सिंगार ॥३८॥

युद्ध-दर्शन

सुन्यौ प्रलय-घन-घोर-लौं जब सैनिक रण-संख ।
किलकि-किलकि कूदे समर, भरि उड़ान बिनु पङ्ख ॥३९॥
धौल धौरहर ढाय महि, करि शिव बिधि कौ ख्याल ।
धूम-धौरहर नील नभ सृजति तोप बिकराल ॥४०॥
चली चमाचम चोप सौं चकचौंधिनि तरवार ।
पटी लोथ पै लोथ , त्यौं बही रक्त-नद-धार ॥४१॥
नहिं यह झरना गेरु कौ, नाहिं शृङ्ग यह श्याम ।
असि-विदीर्ण-करि-कुंभ तें स्रवत शोण अविराम ॥४२॥
कूदत अरि-करि-कुंभलगि, छुवत व्यूह कौ छोर ।
बरजोरी बरजेहुँ पै करत तुरङ्ग मुँहजोर ॥४३॥
तुरङ्ग, तोप, तरवार तहँ निज-निज पूरत काज ।
धूरि-धूम-लोहित-मयी सृजत सृष्टि मनु आज ॥४४॥

स्वदेश-परिचय

रमा, भारती, कालिका करति कलोल असेस ।
बिलसति, बोधति, संहरति जहँ, सोई मम देस ॥४५॥

राजस्थान

मिली हमैं थर्मोपिली ठौर-ठौर चहुँपास ।
लेखिय राजस्थान में लाखनु ल्यूनीडास[1] ॥४६॥

---

[1]राजस्थान में कोई छोटा-सा भी राज्य ऐसा नहीं कि जिसमें थर्मोपिली-जैसी रणभूमि न हो, और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर मिले, जहाँ लियोनिडास-जैसा वीर पुरुष न पैदा हुआ हो ।

—जेम्स टॉड ।

चित्तौर

मन मेरो चित्तौर पै लखि तेगे जस-थंभ ।
भ्रमत, हँसत, रोवत अहो ! सुभट-मौलि नृप कुंभ[1] ॥४७॥
तपत बात उर लाय, फिरि सेवहु धीर समीर ।
प्रथम जाहु चित्तौर-गढ़, पुनि बिरमहु कसमीर ॥४८॥

सन् ४८० ई० के पूर्व फ़ारस के बादशाह ज़र्कसीज़ ने बड़ी भारी सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की। उस समय उस देश में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, जिन्होंने मिलकर अपने में से स्पार्टा के वीर राजा लियोनिडास को थर्मोपिली की घाटी में ८००० सैनिकों के साथ ईरानियों का सामना करने को भेजा। ईरानियों ने कई बार उस घाटी को जीत लेने की चेष्टा की, पर हर बार उन्हें हारकर पीछे लौटना पड़ा। अन्त में, एक विश्वासघाती की मदद से शत्रु पीछे से पहाड़ पर चढ़ आये। अपनी फ़ौज में से बहुत-से लोगों का ईरानियों की तरफ़ मिल जाने का शक होने से लियोनिडास ने सिर्फ़ १००० सैनिकों को पास रख कर सेना को निकाल बाहर कर दिया और आप अपूर्व वीरता से लड़कर वहीं मारा गया। उसकी सेना में से, कहते हैं, केवल एक ही मनुष्य जीवित बचा था।

[1] महाराणा कुम्भ ने वि० सं० १४९७ में मालवे के सुलतान महमूद शाह ख़िलजी को प्रथम बार परास्त कर उसकी यादगार में अपने इष्टदेव विष्णु के निमित्त यह कीर्ति-स्तम्भ बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५०५ माघ बदी १० को हुई थी। + + + + यह भारतवर्ष में अपने ढङ्ग का एक ही स्तम्भ है। वास्तव में, यह हिन्दुओं के पौराणिक देवताओं का एक अमूल्य कोष है। प्राचीन मूर्तियों का ज्ञान संपादन करनेवालों के लिए यह एक अपूर्व साधन है।

[ओझाकृत "राजपूताना का इतिहास"—पहला खंड ३५५]

जनि सुपूत बापा[1] सुभट, साँगा[2], कुंभ[3] प्रताप ।
बीर-जननि चित्तौर ! तूँ दल्यौ दुवन-दलदाप ॥४६॥
वह जौहर[4] रण-रंग वह, वह जूझन जुरि जङ्ग ।
अजहुँ चित्र चित्रत वहै गिरि अरावली-शृङ्ग ॥५०॥
दहलति ही दिल्ली दलित, सुनि चितौर ! तुव धाक ।
क्यों न कहैं फिरि तोहिं हम आजु हिन्द की नाक ॥५१॥
लोहागढ़ त्यों सिंहगढ़, बांधव, रणथंभौर ।
औरहुँ गढ़, सिरमौर पै सब में गढ़ चित्तौर ॥५२॥

मारवाड़

सौर्य-सरित-सिंचित जहाँ जूझन खेत हमेस ।
मारवाड़ अस देस कों कहत मूढ़ मरुदेस ॥५३॥

हल्दीघाट

अहो सुभट-सोनित-सन्यौ, दृढ़व्रत हल्दीघाट[5] ।
अजहूँ हठी प्रताप की जोहत ठाढ़ो बाट ॥५४॥

---

[1]चित्तौर का एक महाप्रतापी राजा, जिसका राज्याभिषेक, भाटों की ख्यातों के अनुसार सं० १६१ में हुआ था। श्री गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा ने लिखा है, कि बापा किसी राजा का नाम नहीं, किन्तु उपनाम था और पीछे से तो वे यह भी भूल गये, कि किसका उपनाम बापा था।

[2]महाराणा संग्रामसिंह।

[3]महाराणा कुम्भकर्ण जिन्हें राणा 'कुम्भा' भी कहते हैं।

[4]एक व्रत, जिसमें युद्ध के समय राजपूत-वीरांगनाएँ सतीत्व-रक्षा के निमित्त धधकती हुई अग्नि में स्वेच्छा से प्रवेश करती थीं !

[5]मेवाड़ की एक सुप्रसिद्ध घाटी और युद्ध-स्थली, जहाँ पर महाराणा प्रतापसिंह और बादशाह अकबर की सेना में घोर युद्ध हुआ था।

सौंचेहुँ, हल्दीघाट ! तुव छाती कुलिश प्रचण्ड ।
बिछुरत बन्धुप्रताप के भई न जो सतखंड ॥५५॥

बांधवगढ़

याही बांधव-दुर्ग[1] पै बिरुझे बाघ बघेल ।
यहीं गर्ज्जि रण-कालिका करी किलकि रण-केल ॥५६॥

भरतपुर-दुर्ग

एइ भरतपुर-दुर्ग है, दुजय दीह भयकारि ।
जहँ जट्टन के छोहरे दिये सुभट्ट पछारि[2] ॥५७॥
तुम ब्रज-जाटनु-दुर्ग कौं, कहु, को ढाहनहार ।
जासु आपु रखवार भो श्रीब्रजराज-कुमार ॥५८॥

बुन्देलखण्ड

इतहूँ तौ रण-चंडिका वैसोइ खेली खेल ।
राजथान तें घटि कहा हमरो खंडबुँदेल ॥५९॥
यह सुभूमि सोनित-सनी, यह पहार, यह धार ।
हम बुँदेल-खंडीनु को यहँइ स्वरग-बिहार ॥६०॥
लोटि-लोटि बज्राङ्ग भे जहँ चँदेल बुन्देल ।
जन्म-जन्म ता भूमि पै, प्रभु ! खिलाइयौ खेल ॥६१॥
देखि ओरछा-भौन ये बिमल बेतवै-तीर ।
सुनि हरिदौल-कथा[3] अजौं मन ह्वै जात अधीर ॥६२॥

---

[1]रीवाँ राज्य का सुप्रख्यात 'बांधवगढ़' नाम का प्राचीन क़िला। घेलखंड में इसकी टक्कर का कोई भी क़िला नहीं। इसी की बदौलत घेलों ने अपने प्रबल शत्रुओं के कई बार दाँत खट्टे किये।

[2]यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

आठ फिरङ्गी, नौ गोरा। लड़े जाट के दो छोरा॥

[3]देखिये टिप्पणी—पहला शतक; ३६ दोहा।

भूपति मधुकर साह-से[१] वीरसिंह-से[२] वीर ।
जहँ बिहरे बिचरे, यहै वही बेतवा-तीर ॥६३॥
ओही तुंगारण्य यह, वही बेतवागंग[३] ।
वही ओरछा, पै कहाँ यहाँ आजु वह रंग ॥६४॥
झाँसी-दुर्गम-दुर्ग धनि, महिमा अमित अनूप ।
जहाँ चंचला[४] अवतरी प्रगट चंडिका-रूप ॥६५॥

---

[१]इनके शासन-काल में मुग़ल-सम्राट् अकबर ने बुन्देलखंड-विजय करने का कई बार प्रयत्न किया, पर उसके सारे उद्योग असफल ही रहे। यह महाराज शूरवीर होने के अतिरिक्त सफल शासक एवं परम भागवत भी थे। महाकवि केशवदास ने इनके विषय में लिखा है—

जिनके राज रसा बसे 'केशव' कुशल किसान ।
सिंधु-दिशा, नहिँ बारही पार बजाय-निसान ॥
सबल साह अकबर-अवनि जीति लई दिसिचारि ।
मधुकरसाह नरेश गढ़ तिनके लीने मारि ॥
खान गनै सुलतान कों राजा रावत वादि ।
हारे मधुकरसाह सों आपुन साह मुरादि ॥

[२]वीरसिंहदेव महाराज मधुकरशाह के पुत्र थे। इनकी युद्ध-प्रियता बुन्देलखंड में प्रसिद्ध है। 'वीरसिंह-देव-चरित्र' में कविवर केशवदास ने इनकी वीर-विरुदावली का अच्छा वर्णन किया है।

[३]महाकवि केशवदास लिखते हैं—

नदी बेतवै-तीर जहँ तीरथ तुङ्गारन्न ।
नगर ओरछो बहु बसै धरनीतल में धन्न ॥

[४]महारानी लक्ष्मीबाई।

धनि, रण-मत्त गठेवरा[1] ! गौरव-गरब निकेत ।
हमरे खंडबुँदेल कौ साँचेहुँ तूँ कुरुखेत ॥६६॥
है यह वही गठेवरा, जहाँ जूझि मजबूत ।
रहे खेत गृह-युद्ध में सवा लक्ख रजपूत ॥६७॥

---

[1] बुन्देलखंडान्तर्गत छत्रपुर-राजधानी से ३ मील पूर्व एक सुप्रसिद्ध रणस्थल ।

नवाब शुजाउद्दौला ने अपने विश्वास-पात्र और वीर-वर गोसाईं अनूपगिरि, उपनाम हिम्मत बहादुर, को संवत् १८३५ के लगभग एक बड़ी सेना देकर बुन्देलखंड पर विजय प्राप्त करने को भेजा । हिम्मत बहादुर बुन्देलखंड-निवासी था, पर था देशद्रोही । अस्तु; उस समय महाराज गुमानसिंह बाँदा में राज्य करते थे । नोने अर्जुनसिंह पँवार गुमानसिंह के सेनापति थे । इन्होंने हिम्मत बहादुर की फ़ौज को ऐसा हराया, कि उसके पैर उखड़ गये । नवाब के दूसरे सेनापति करामतखाँ को तो जमना तैर कर किसी तरह अपने प्राण बचाने पड़े । नोने अर्जुनसिंह ने बुन्देलखंड की लाज रख ली । पर भारत की चिरसहेली फूट बुन्देलखंड की स्वाधीनता न देख सकी । महाराज छत्रसाल के वंशधरों ने आपस में लड़ना शुरू कर दिया । नोने अर्जुनसिंह पन्नावाले सरनेतसिंहजी का पक्ष लेकर पन्ना के मन्त्री बेनीहुजूरी से, जिसके वंशधर अब मैहर में राज्य करते हैं, लड़ने को उद्यत हुए । इस युद्ध में समस्त बुन्देलखंड के बुन्देले एवं अन्य राजपूत किसी-न-किसी तरफ़ से लड़ने को शामिल हुए । गठेवरा के मैदान में युद्ध हुआ । इस युद्ध को 'बुन्देलखंड का महाभारत' कहते हैं । बेनीहुजूरी इस लड़ाई में मारा गया और खेत अर्जुनसिंह के हाथ रहा । इस अभागे गृह-युद्ध में अखंड शक्तिशाली बुन्देलखंड खंड-खंड हो गया ।

है यह वही गठेवरा, जहँ अखंड बलचंड ।
खंड-खंड गृह-युद्ध तें भयौ बुँदेला-खंड ॥६८॥
यहिं आल्हा-ऊदल[1] लरे, भिरे मरद मलखान[2] ।
यही महोबा-भूमि है, उन बीरन की खान ॥६९॥
सह-प्रताप आरावली, सहित सिवा सह्याद्रि ।
चन्द्र-चन्द्रिका-इव सदा, छत्रसाल बिंध्याद्रि ॥७०॥

पराधीनता

पराधीनता-दुख-भरी कटति न काटें रात ।
हा ! स्वतन्त्रता कौ कबै ह्वैहै पुण्य प्रभात ॥७१॥
अथयौ ओज-प्रताप-कौ आरत भारत-माँझ ।
अब तौ आई दुखमयी अधिक अंधेरी साँझ ॥७२॥
निजता सों तो बैर अब, है परतासों प्रीति ।
निज तौ पर, पर निज भये, कहा दई ! यह रीति ॥७३॥
पर-भाषा, पर-भाव, पर-भूषन, पर-परिधान ।
पराधीन जन की अहै यह पूरी पहिचान ॥७४॥
पतित वहै, नास्तिक वहै, रोगी वहै मलीन ।
हीन, दीन, दुर्बल वहै, जो जग अहै अधीन ॥७५॥

---

[1]महोबे के अधीश चंदेल परमाल के बनाफर सामन्त । इन दोनों वीर भ्राताओं की विरुदावली के ओजस्वी गीत आज़ भी गाँव-गाँव में 'आल्हा' के नाम से गाये जाते हैं । आल्हाकाव्य, सचमुच अपनी शैली का एकमात्र वीर-काव्य है ।

[2]महोबे का एक महान् साहसी और वीर योद्धा । चंदेलों के इतिहास में यह भी अपना एक विशेष स्थान रखता है । महोबे की लड़ाई में वीरवर मलखान काका कन्ह के हाथ से मारा गया था ।

दंभ दिखावत धर्म कौ यह अधीन मति-अंध ।
पराधीन अरु धर्म कौ, कहौ कहा संबंध ? ॥७६॥
जैहै डूबि घरोक में भारत-सुकृत-समाज ।
सुदृढ़ सौर्य-बल-बीर्य कौ रह्यौ न आज जहाज ॥७७॥
कत भूल्यौ निज देस, मति भई और-तें-और ।
सहज लेत पहिंचानि जब पसु-पंछिहुँ निज ठौर ॥७८॥
जरि अपमान-अंगार तें अजहुँ जियत ज्यौं छार ।
क्यों न गर्भ तें गरि गिर्‌यौ, निलज नीच भू-भार ! ॥७९॥
लियौ धारि पर-भेष अरु पर-भाषा, पर-भाव ।
तुम्हैं परायो देखि यौं, क्यों न होय हिय घाव ? ॥८०॥
दई छाँड़ि निज सभ्यता, निज समाज, निज राज ।
निज भाषाहूँ त्यागि तुम भये पराये आज ॥८१॥
परता में तुम परि गये, नहिं निजता कौ लेस ।
निज न पराये होहिं क्यों बसहु जाय परदेस ॥८२॥
ह्वै पर अब अपनेनु तें करत कौन कहा तुम आस ।
रँगे सियारनु पै कहौ करत कौन विश्वास ? ॥८३॥
मरन भलो निज धर्म में, भय-दायक परधर्म[1] ।
पराधीन जानैं कहा, यह निज-पर कौ मर्म ॥८४॥
चाटत नित प्रभु-पद रहौ, दिन काटत बिन लाज ।
जूंठ टूकही अब तुम्हैं, है त्रिलोक कौ राज ॥८५॥
मन लागत न स्वदेस में, यातें रमत बिदेस ।
परपितु सों पितु कहत ये, तजि निज कुल, निज देस ॥८६॥

---

[1]स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

—गीता

आस देस-हित की हमैं नहिं तुम तें अब लेस ।
'जैसे कंता घर रहे, तैसे रहे बिदेस' ॥८७॥
हम अधीन हिन्दून कौ, कहौ, कौन अब काज ?
पाप-पंक धोवैं न क्यों, मिलि रोवैं सब आज ॥८८॥

स्वाधीनता

निज भाषा, निज भाव, निज असन-बसन, निज चाल ।
तजि परता, निजता गहूँ, यह लिखियौ, बिधि ! भाल ॥८९॥
तुच्छ स्वर्गहूँ गिनत जो इक स्वतंत्रता-काज ।
बस, वाही के हाथ है आज हिन्द की लाज ॥९०॥
भीख-सरिस स्वाधीनता कन-कन जाचत सोधि ।
अरे, मसक की पाँसुरिनु पाव्यौ कौन पयोधि ? ॥९१॥
वही धर्म, वही कर्म, बल, वहि विद्या, वहि मन्त्र ।
जासों निज गौरव-सहित होय स्वदेश स्वतंत्र ॥९२॥

पराधीन और स्वाधीन

पराधीन केहि कामकौ, जो सुर-पति-सम होय !
सतत सुखी स्वाधीनही, धनि, जगतीतल कोय ॥९३॥
जौ अधीन, तौ छाँड़ियै स्वर्गहुँ बिभव-बिलास ।
जौपै हम स्वाधीन, तौ भलो नरक कौ बास[1] ॥९४॥
पराधीन जौ जन, नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु ।
पराधीन जौ जन नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु ॥९५॥

---

[1] जौ न जुगुति पिय-मिलन की, धूरि मुकुति-मुँह दीन ।
जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरकहूँ कीन ॥
—बिहारी

स्वदेश-विद्रोह

भूलेहुँ कबहुँ न जाइये देस-बिमुखजन पास ।
देश-बिरोधी-संग तें भलो नरक को बास ॥९६॥
सुख सों करि लीजै सहन कोटिन कठिन कलेस ।
विधना, वै न मिलाइयौ, जे नासत निज देस ॥९७॥
सिव-बिरंचि-हरिलोकहूँ, बिपत सुनावै रोय ।
पै स्वदेस-बिद्रोहि कों सरन न दैहै कोय ॥९८॥

व्यर्थ गर्व

अरे, गरब कत करत तूँ खरब पाय अधिकार !
रहे न जग दसकंध-से दिग-विजयी जुगचार ॥९९॥
कनक-पुरी जब लंक-सी झुरी अछत दसकंध ।
तुव झोपरियाँ कौंस की कौन पूँछिहैं अंध ॥१००॥

चौथा शतक

मारुति-वन्दना

कनक-कोट-कंगूर जेहिं किये धौरहर धूम ।
सो भारत-आरति हरौ मारुति-लाँबी-लूम ॥१॥
लाँबो लूम घुमायकैं कनक-कोट-चहुँओर ।
करत केलि किलकारि दै कपि केसरी-किसोर ॥२॥

लंका-युद्ध

भिरे अनल-मुख कपिनु सों तम-मुख राकस-पुञ्ज ।
भयौ युद्ध-थल लंक कौ बिनुऋतु किंसुक-कुञ्ज ॥३॥
आवत कज्जल-कूट-लौं प्रलय-रूप, सतसंध !
कुम्भकर्ण दसकंध कौ बिकट बंधु रण-अंध ॥४॥
भूलेहुँ याहि न जानियौ बृत्र-शत्रु-पबि-पात ।
इन्द्रजीत ! है यह वही मारुति-मुष्टि-अघात ॥५॥
मेघनाद महितल गिर्‌यौ सुनि मारुति-हुँकार ।
कहूँ तून, कहुँ धनु पर्‌यौ, कहुँ कृपान, कहुँ ढार[1] ॥६॥

रुक्मिणि-हरण

बरसावत सर रिपुन पै रथतें रुकमिनि-रौन ।
मुख-प्रसेद पोंछति प्रिया, करि अँचरा सों पौन ॥७॥

इस दोहे की छाया पर
[1]कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल ।
कहुँ मुरली, कहुँ पीतपटु, कहूँ मुकुट बनमाल ॥
—बिहारी

गहि मेरो कर रुक्मिनि ! मति काँपै घबराय ।
दूँगो प्रतिपच्छीनु के पच्छनि काटि गिराय ॥८॥

अभिमन्यु

जइयौ चितवत चाव सों प्रिया उत्तरा-ओर ।
ना जानैं, कब लौटिहौ, प्यारे पार्थ-किसोर ! ॥९॥
धन्य, उत्तरा-उर-धनी, धन्य, सुभद्रा-नन्द !
धनि भारत-भट-अग्रनी, पार्थ-पयोनिधि-चंद ॥१०॥
धन्य, पार्थ-चख-चंद, तूँ धन्य, सुभद्रा लाल ।
सातहुँ महारथीनु सों कियौ युद्ध बिकराल ॥११॥
सातहुँ महारथीनु संग संगर-जूझनहार ।
ब्यूह-बिदारन धनु-धनी, बलि-बलि, पार्थ-कुमार ॥१२॥

भीम-भीमता

रहौ न केते पांडु-सुत बुधि-बल-बिक्रम-सीम ।
द्रौपदि-बेनी बाँधिबो जानत पै इक भीम ॥१३॥
धर्मबीर अगनित रहौ, युद्धबीर बल-सीम ।
पै द्रौपदि-अपमान-हर भीमकर्म इक भीम ॥१४॥

द्रौपदी-केश-कर्षण

कृष्णा-कच-कर्षण लखत, धिक, पारथ नतग्रीव !
धिक पौरुष, धिक बाहु-बल, धिक-धिक यह गांडीव ॥१५॥
खैंचत खल तिय-पट, तऊ खैंचत नाहिँ कृपान ।
धर्मराज ! धिक धर्म अस, धिक धीरज, धिक ज्ञान ॥१६॥
छाँड़ि, कहा कृष्णा-कचनु करषत मोँड़ि उमाह ।
करिहै केस-कृसानु यह कौरव-कानन-दाह ॥१७॥
धिक, दिल्ली हतभागिनी ! अजहुँ खरी बिनुलाज ।
कृष्णा-कच-कर्षण लखति, परी न तो सिर गाज ॥१८॥

गई न धँसि पाताल तूँ, लखि द्रौपदि-पट-हीन।
धिक, दिल्ली दुरभागिनी! दिन-दिन दीन अधीन ॥१६॥

चाणक्य

दियौ उलटि साम्राज्य तैं करि अशक्यहूँ शक्य।
नीति-बीरता[1] में तुहीं कुसल एक चाणक्य ॥२०॥
राज-मुकुट नवनंद[2] के, चन्द्रगुप्त सुख-दैन!
लखि लुंठित तुव पगनु पै कबै सिरैहौं नैन ॥२१॥

चंद्रगुप्त

जासु समर-हुङ्कार तें काँपत विश्व विराट।
सेल्यूकस[3] करि-केहरी जयतु गुप्त सम्राट ॥२२॥

---

[1]नवनन्दन कों मूलसहित खोद्यो छन-भर में।
चन्द्रगुप्त में श्री राखी, नलिनी जिमि सर में ॥
क्रोध प्रीति सों एक नासिकैं एक बसायौ।
शत्रु मित्र कौ प्रगटि सबनु फलु लै दिखरायौ ॥
[मुद्राराक्षस

[2]महाराज महानन्द और उनके आठ पुत्र।

[3]सिकंदर आज़म का यह एक सेनापति था। इसने भारत के पूर्वीय प्रदेशों पर अधिकार करके ३०५ ई० पूर्व में सिन्ध नदी को पार किया। परन्तु चंद्रगुप्त ने उसे खदेड़ दिया। दोनों में संधि हो गई। सेल्यूकस ५०० हाथी लेकर संतुष्ट हो गया। उसने अपनी कन्या चंद्रगुप्त को ब्याह दी और अपना दूत मेगास्थनीज़ भी चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा, जिसने तत्कालीन भारत का अपनी आँखों-देखा एक सुन्दर वृत्तान्त लिखा।

काका कन्ह

अरि-आँतनु की बाँधिकैं सुभग सीस पै पाग ।
अलग अलापत अश्व पै कन्ह मत्त रण-राग ॥२३॥
अंतकहूँ के अंत-कर खड़्ग-कामिनी-कंत ।
हैं कहँ काका कन्ह-से आजु सूर-सामन्त ॥२४॥

कैमास

किते न उद्धत भूप किय, पृथीराज ! तुव दास ।
हनि ऐसो कैमास[1] अब तुव जीवनु कै मास ? २५॥

चामुंडराय

लियो बाँधि चामुण्डरै,[2] हन्यौ सुमति कैमास ।
संभरीस ! साम्राज्य की करत तऊ तैं आस ॥२६॥

---

[1]यह पृथ्वीराज का एक विश्वासपात्र मंत्री था। दुर्भाग्य से, महाराज की एक कर्नाटकी नाम की वेश्या से इसका प्रेम हो गया। रानी इच्छनकुमारी ने महाराज को इस अनुचित संबंध का पता दे दिया। महाराज ने स्वयं भी एक दिन मन्त्री को कर्नाटकी के साथ देख लिया और उसे अपने बाण का लक्ष्य कर मार डाला। कैमास की इस हत्या से सारे राज्य में असंतोष फैल गया। महाराज पृथ्वीराज खुद अपने कार्य पर बहुत पछताये। कैमास की मृत्यु से उनका मानो एक हाथ ही कट गया। मंत्रि-वियोग के इस दारुण-दुख को पृथ्वीराज आमरण नहीं भूले।

[2]पृथ्वीराज के पुत्र रेणुसिंह और चामुण्डराय में भारी मित्रता थी। चंद्रपुण्डीर इत्यादि सामंत मामा-भांजे की इस मैत्री पर जलते थे। वे चाहते थे, कि किसी तरह भी चामुण्डराय को नीचा दिखाना चाहिए। संयोगवश, एक दिन महाराज पृथ्वीराज का हाथी छूट गया। एक गली में चामुण्डराय और उसका सामना हो गया। हाथी चामुण्ड-

उद्धत रिपु-आहुतिन सों पूरि युद्ध-मख-कुण्ड ।
चल्यौ समर तें स्वर्ग कों अमर राय चामुंड ॥२७॥

लंगरिराय

है तेरी ही मूँछ, औ तेरी ही तरवार ।
तुहीं पैज-रखवार है, संयमराय[1] कुमार ! ॥२८॥
किन तुव मरनु सराहियै, संयमराय-कुमार !
जाहि शत्रु जयचंदहूँ दियौ अश्रु-उपहार ॥२९॥
अहैं सूर-सामन्त तुव औरहुँ, संभरिराय ?
पै दूजो नहिं कन्ह, नहिं दूजो लंगरिराय ॥३०॥

राय पर झपटा । हटने को कहीं स्थान न था । इसलिए वीर सामंत ने उसपर तलवार का ऐसा वार किया, कि उसकी सूँड़ कट गई और वह वहीं गिरकर मर गया । पृथ्वीराज को वह हाथी प्राणप्रिय था । उधर चामुण्डराय के विरुद्ध शिकायतें भी काफ़ी पहुँच चुकी थीं । महाराज यह सुनकर आग-बबूला हो गए । चामुण्डराय को गिरफ़्तार करने के लिए गुरुराम और अजानुबाहू को भेजा । परन्तु स्वामिभक्त चामुण्डराय ने स्वयं ही अपने हाथों अपने पैरों में बेड़ी डाल ली । चामुण्डराय की गिरफ़ारी से ही पृथ्वीराज के अधःपतन का श्रीगणेश हुआ । शहाबुद्दीन गोरी के कराल आक्रमण से साम्राज्य की रक्षा करने के लिए पृथ्वीराज के बहनोई महाराणा समरसिंह ने विलासमग्न चौहान-राज को जब बहुत-कुछ फटकारा और लज्जित किया, तब कहीं उनके कहने पर वीर-शिरोमणि चामुण्डराय की बेड़ियाँ काटी गईं । एकमात्र वीर सामंत चामुण्डराय जिस वीरता और साहस से मुहम्मद गोरी से लड़ा, वह वर्णनातीत है ।

[1] देखो टिप्पणी—पहला शतक; २५ दोहा ।

कहरकंठीर और चंद्रपुंडीर

दुहूँ मत्त, जयचन्द ! वै, दुहुँ बीर रण-धीर ।
यहाँ कहर कंठीर,[१] तौ वहाँ चंद्रपुंडीर[२] ॥३१॥

संयोगिता

पितु-पति-कुल कूलनि अरै, दैहै बाढ़ि ढहाय ।
कलह-धार संयोगिता-सरिता, संभरिराय ! ॥३२॥
पृथीराज, करिहै कहा उर सँयोगितै धारि ।
अधरामिय-प्यासी न, वह सोनित-प्यासी नारि ॥३३॥
इत गोरी[३] गर लाय तूँ सोवत, संभरिराय ?
भोगत राज-सिरीहिं तुव उत गोरी[४] गरलाय ॥३४॥

जयचंद

खोलि बिदेसिनु कों दियौ देस-द्वार, मतिमंद[५] ।
स्वारथ-लगि कीनों कहा, अरे कुमति जयचंद ! ॥३५॥
स्वर्गदेस लुटवाय, सठ ! कियौ कनक तें छार ।
फूटबीज इत ब्वै गयौ जयचँद जाति-कुठार ! ॥३६॥
दियौ बिदेसिनु अरपि धन-धरती, धरम स्वछंद ।
हमैं फूट अब देत तूँ, धिक, दानी जयचंद ॥३७॥

---

[१] कन्नौज के महाराज जयचंद ने इसी वीर योद्धा को अपनी कन्या संयोगिता का वाग्दान दिया था ।

[२] महाराज पृथिवीराज चौहान का एक प्रमुख सामंत ।

[३] महारानी संयोगिता ।

[४] शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ।

[५] काहे तूँ चौका लगाये, जयचँदवा ।
अपने स्वारथ भूलि लुभाये, काहे चोटीकटवा बुलाये, जयचँदवा ॥
अपने हाथ से अपने कुल कै काहे तैं जड़वा जटाये, जयचँदवा ।

उद्धत रिपु-आहुतिन सों पूरि युद्ध-मख-कुण्ड ।
चल्यौ समर तें स्वर्ग कों अमर राय चामुंड ॥२७॥

लंगरिराय

है तेरी ही मूँछ, औ तेरी ही तरवार ।
तुहीं पैज-रखवार है, संयमराय[1] कुमार ! ॥२८॥
किन तुव मरनु सराहियै, संयमराय-कुमार !
जाहि शत्रु जयचंदहूँ दियौ अश्रु-उपहार ॥२९॥
अहैं सूर-सामन्त तुव औरहुँ, संभरिराय ?
पै दूजो नहिं कन्ह, नहिं दूजो लंगरिराय ॥३०॥

राय पर झपटा । हटने को कहीं स्थान न था । इसलिए वीर सामंत ने उसपर तलवार का ऐसा वार किया, कि उसकी सूँड़ कट गई और वह वहीं गिरकर मर गया । पृथ्वीराज को वह हाथी प्राणप्रिय था । उधर चामुण्डराय के विरुद्ध शिकायतें भी काफ़ी पहुँच चुकी थीं । महाराज यह सुनकर आग-बबूला हो गए । चामुण्डराय को गिरफ़्तार करने के लिए गुरुराम और अजानुबाहू को भेजा । परन्तु स्वामिभक्त चामुण्डराय ने स्वयं ही अपने हाथों अपने पैरों में बेड़ी डाल ली । चामुण्डराय की गिरफ़ारी से ही पृथ्वीराज के अधःपतन का श्रीगणेश हुआ । शहाबुद्दीन गोरी के कराल आक्रमण से साम्राज्य की रक्षा करने के लिए पृथ्वीराज के बहनोई महाराणा समरसिंह ने विलासमग्न चौहान-राज को जब बहुत-कुछ फटकारा और लज्जित किया, तब कहीं उनके कहने पर वीर-शिरोमणि चामुण्डराय की बेड़ियाँ काटी गईं । एकमात्र वीर सामंत चामुण्डराय जिस वीरता और साहस से मुहम्मद गोरी से लड़ा, वह वर्णनातीत है ।

[1] देखो टिप्पणी—पहला शतक; २५ दोहा ।

कहरकंठीर और चंद्रपुंडीर

दुहूँ मत्त, जयचन्द ! वै, दुहुँ बीर रण-धीर ।
यहाँ कहर कंठीर,[१] तौ वहाँ चंद्रपुंडीर[२] ॥३१॥

संयोगिता

पितु-पति-कुल कूलनि अरै, दैहै बादि ढहाय ।
कलह-धार संयोगिता-सरिता, संभरिराय ! ॥३२॥
पृथीराज, करिहै कहा उर सँयोगितै धारि ।
अधरामिय-प्यासी न, वह सोनित-प्यासी नारि ॥३३॥
इत गोरी[३] गर लाय तूँ सोवत, संभरिराय ?
भोगत राज-सिरीहिं तुव उत गोरी[४] गरलाय ॥३४॥

जयचंद

खोलि बिदेसिनु कों दियौ देस-द्वार, मतिमंद[५] ।
स्वारथ-लगि कीनों कहा, अरे कुमति जयचंद ! ॥३५॥
स्वर्गदेस लुटवाय, सठ ! कियौ कनक तें छार ।
फूटबीज इत ब्वै गयौ जयचँद जाति-कुठार ! ॥३६॥
दियौ बिदेसिनु अरपि धन-धरती, धरम स्वछंद ।
हमैं फूट अब देत तूँ, धिक, दानी जयचंद ॥३७॥

---

[१]कन्नौज के महाराज जयचंद ने इसी वीर योद्धा को अपनी कन्या संयोगिता का वाग्दान दिया था ।

[२]महाराज पृथिवीराज चौहान का एक प्रमुख सामंत ।

[३]महारानी संयोगिता ।

[४]शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ।

[५]काहे तूँ चौका लगाये, जयचँदवा ।
अपने स्वारथ भूलि लुभाये, काहे चोटीकटवा बुलाये, जयचँदवा ॥
अपने हाथ से अपने कुल के काहे तैं जड़वा जटाये, जयचँदवा ।

आल्हा और ऊदल

आल्हा ऊदल[१] ही सही, गही साँग तरवार ।
ज्यौं साँचे हथयार, त्यों साँचे घालनहार ॥३८॥
कियौ समर-साको सही जूझि महोबावाल ।
उमँगि ओज आवत अजौं सुनि-सुनि अलह-हवाल ॥३९॥
नहिं आल्हा-ऊदल रहे, नाहिं मरद मलखान[२] ।
सुजस-जुन्हाई पै अजौं करति जान्हवी-न्हान ॥४०॥

गोरा और बादल

धनि, गोरा रण-साहसी ! धँसी साँग हिय-पार ।
बाँधि आँत, पुनि तेग लै, भयौ तुरंग-असवार ॥४१॥
बस, गोरा-रण-धीरता[3] लखियौ, पदुमिनि ! आज ।
रखिहै सीस चढ़ाय वह तुव सुहाग की लाज ॥४२॥

फूट के फल सब भारत बोये, बैरी कै राह खुलाये, जयचँदवा ॥
औरौं नासि तैं आपौ बिलाने, निज मुँह कजरी पुताये, जयचँदवा ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[१]देखो टिप्पणी—तीसरा शतक; ७४ दोहा । आल्हा साँग और उसका भाई ऊदल तलवार बाँधा करता था । साँग बाँधनेवाला तो आल्हा के बाद कोई हुआ ही नहीं । इन दोनों वीर भ्राताओं ने बावन लड़ाइयों में भाग लिया और शत्रुओं को परास्त किया था ।

[२]देखो टिप्पणी—तीसरा शतक, ६६ दोहा ।

[3]फिरि आगे गोरा तब हाँका । खेलौं, करौं आजु रन साका ॥
हौं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा ॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ घटा मोहिं देख बिलाही ॥

× × ×

गोरा, तुव बद्दलु बड़ो नीरस, निपट कठोर ।
बिदा होत हेर्‌यौ न जो प्रिया लोयननु ओर ॥४३॥

गोरै साथ लीन्ह सब साथी । जस मैमंत सूँड़ बिनु हाथी ॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्हीं । आवत आइ हाँक रन दीन्हीं ॥

+ + +

भई बगमेल, सेल घन घोरा । औ गज-पेल, अकेल सो गोरा ॥
सहज कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे मरै गोरा के आगे । बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैस पतङ्ग आगि धँसि लेई । एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै । लोटहिं कंधहिं कंध निरारै ॥
घरी एक भारत भा, असवारन्ह मेल ।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल ॥
कोपि सिंधु सामुहै रन मेला । लाखन्ह सों नहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा । जैसे पवन बिदारै घटा ॥
जेहि सिर-देहि कोपि करवारू । स्यों घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस, कबंध निगारे । माट मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥

+ + +

सबै कटक मिलि गोरहिं छेका । गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला । सिंघ के मोछ हाथ को मेला ? ॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा । मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करैं सिंघ मुख सौंहहिं दीठी । जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी ॥
रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात ।
जौलगि रुधिर न धौवौं तौलगि होइ न रात ॥

[पदमावत

कहतु कौन 'बद्दल' तुम्हैं, हौ तुम समर-समीर ।
घेरत निजदल-बद्दलै, रिपु-दल-बद्दल चीर ॥४४॥
अलादीन-दल दारिबे, बद्दल बीरु बलन्द ।
मेरे मत, मेवाड़ में प्रगट्यौ पारथ-नन्द ॥४५॥

पद्मिनी-जौहर

वह चितोर की पद्मिनी, किमि पैहौ, सुलतान[1] !
कब सिंहिनि-अधरानु कौ कियौ स्वान मधु-पान ? ॥४६॥
चंचरीक ! चित्तौर में नहिं पैहै रस-जाल ।
ह्वैहै चम्पक-माल-लौं तोहिं पद्मिनी बाल ॥४७॥
भई भस्म जहँ पद्मिनी आरज-धर्म समोय ।
यज्ञ-अग्निहूँ तें अधिक पावन पावक सोय ॥४८॥
जा दिन जौहर तें जगी ज्वाल-माल अति चण्ड !
जन-हीतल-सीतल करन प्रगट्यौ जग श्रीखण्ड ॥४९॥
केहि कारन सेवत सुरुचि नित नवीन समसान ?
जहँ-तहँ जौहर की भसम ढूँढ़त संभु सुजान ॥५०॥
क्यों न धारियै सीस पै वह जौहर की राख ।
भव-तनु-भूषन भसम तें जो पुनीत गुन लाख ॥५१॥
लिखे न केते सुमृति में ब्रत-बिधान सबिबेक ।
पै जग-जाहिर जंग कौ ब्रत जौहर बस एक ॥५२॥

महाराणा साँगा

लसति जासु पबि-देह पै असी-घाव की छाप ।
सो साँगा[2] निज साँग तें दलै न काकौ दाप ॥५३॥

---

[1] अलाउद्दीन खिलजी से तात्पर्य है ।

[2] महाराणा संग्रामसिंह ।

है राणा साँगा ! तुहीं रण में मरद मलाह ।
किते न खाँड़े-घाट तैं दिय उतारि गुमराह ॥५४॥

जयमल और पत्ता

है जयमल[1] राठौरही तुव सपूत, चित्तौर ।
भरत-भरत तुव घाव जो दिये प्राण तिहिं ठौर ॥५५॥
पत्ता-लौं अकबर-अनी पत्ता[2] दई उड़ाय ।
दिये फेरि चित्तौर पै प्राण-प्रसून चढ़ाय ॥५६॥
लाज आज मेवाड़ की, बस, तुम्हरेहीं हाथ ।
जयमल ! पत्ता ! फूल-लौं हँसि चढ़ाइयौ माथ ॥५७॥
जहँ जयमल, पत्ता वहीं, एक प्राण द्वै देह ।
भयौ अमर मेवाड़ में, इन दोउन कौ नेह ॥५८॥

महाराणा प्रताप

अणु-अणु पै मेवाड़ के छपी तिहारी छाप ।
तेरे प्रखर प्रताप तें, राणा प्रबल प्रताप ! ॥५९॥
जगत जाहिं खोजत फिरै, सो स्वतंत्रता आप ।
बिकल तोहिं हेरत अजौं, राणा निठुर प्रताप ! ॥६०॥
है, प्रताप ! मेवाड़ में तुहीं समर्थ सनाथ ।
धनि-धनि, तेरे हाथ ये, धनि-धनि तेरो माथ ॥६१॥

---

[1] बेदनौर-नरेश जयमल राठौर ।

[2] चन्दावत कुल की जगवत शाखा में उत्पन्न हुआ । प्रताप-सिंह, जिसे लोग 'पत्ता' या 'पत्ते' कहा करते थे । यह कैलवाड़े का राजा था ।

रजपूतनु की नाक तूँ, राणा प्रबल प्रताप !
है तेरी ही मूँछ की राजथान में छाप[1] ॥६२॥
काँटे-लौं कसक्यौ सदा को अकबर-उर माहिं ?
छाँड़ि प्रताप-प्रताप जग दूजो लखियतु नाहिं ॥६३॥
ओ, प्रताप मेवाड़ के ! यह कैसो तुव काम ?
खात खलनु तुव खड्‌ग, पै होत काल कौ नाम ॥६४॥
उमँड़ि समुद्र-समुद्र-लौं ठिले आप तें आप ।
करुण-वीर-रस-लौं मिले सक्ता[2] और प्रताप ॥६५॥

महाराणा राजसिंह

या औरंग-सिसुपाल तें रूपनगर की बाल[3] ।
हरि-ज्यों धाय उधारियौ, राजसिंह नरपाल ! ॥६६॥

---

[1]बूड्यौ राज-समाज, दिल्ली-यवन समुद्र में ।
आरज-गौरव-लाज, इक राखी परताप तुम ॥
अकबर परमप्रवीन, राजपूत दागिल किये ।
इक मिवाड़ दागी न, तुव प्रताप-बल-करनै ॥
क्षत्र-क्षेत्र निःक्षत्र, भयौ होम निहचय कबै ।
जौ न धरत सिर छत्र, परम हटी परताप तूँ ॥
लै परताप उछङ्ग, जननी जन्म सुफल भयौ ।
अकबर-काल-भुजङ्ग, कुचले फन जिन पगतरैं ॥

—राधाकृष्णदास

[2]महाराणा प्रतापसिंह के भ्राता शक्तिसिंहजी, जो घर की किसी अनबन के कारण दिल्ली में अकबर के अधीन रहने लगे थे ।

[3]प्रभावती ।

चूड़ावत का प्रेमोपहार

प्राण-प्रिया कौ सीस लै, परमप्रेम उपहार ।
चल्यौ हुलसि रण-मत्त ह्वै चूड़ावत सरदार ॥६७॥
पायौ प्रणय-प्रमाण में निज प्यारी-प्रियसीस ।
चूड़ावत ! उर धारि सो ह्वैहो समर-गिरीस ॥६८॥

छत्रपति शिवाजी

किधौं रौद्ररस, रुद्र कै, किधौं ओज-अवतार ।
शाह-सुवन शिवराज ! तैं किधौं प्रलय साकार ॥६९॥
रखी तुहीं सरजा शिवा ! दलित हिन्द की लाज ।
निरवलंब हिन्दून कों तूँहीं भयौ जहाज ॥७०॥
यही रुद्र-अवतार है, यही सुभैरव-रूप ।
एही भीषण भीम है शिवा भौंसिला भूप ॥७१॥
औरँगहू तुव धाक तें भाजत भामिनि-भौन ।
है लोहा तुव सँग, शिवा ! लेनहार फिरि कौन ? ॥७२॥
नित प्रति सेवा[1] खलनु कौ तोहिं कलेवा देत ।
पेट खलावत, काल ! तैं तऊ आय रण-खेत ॥७३॥
गरब करत कत बावरे, उमँगि उच्च गिरि-शृङ्ग !
यश-गौरव शिवराज कौ इत नभ तें हुँ उतङ्ग ॥७४॥
'करकीं क्यों आपहिं चुरीं ?' कहति हरम अकुलाय ।
'सुन्यौ नाहिं, आवत शिवा समर-निसान बजाय ?' ॥७५॥
ह्वैहो विजयी विश्व में, अजित रायगढ़-राज !
गहि कृपाण अरि काटिहौ, राखि हिन्द की लाज ॥७६॥

---

[1] शिवाजी ।

किते न तोपनु तें शिवा दृढ़ गढ़ दिये ढहाय ।
केते सुरँग लगायकैं दिये न दुर्ग उड़ाय ॥७७॥

महाराजा छत्रसाल

छत्रसाल नृप ! नाम तुव मङ्गल-मोद-निधान ।
सुमिरि जाहिं अजहूँ बनिक खोलत प्रात दुकान[1] ॥७८॥
चंपत को बच्चा तुहीं, है इक सच्चा शेर ।
जब्बर बब्बर-बंस के किये केते जेर ॥७९॥
रैयत-हित-हियदान दिय, हथयारन-हित हाथ ।
छत्रसाल, धनि ! कृष्ण-हित नैन, धर्म-हित माथ ॥८०॥
गहि कृपाण-कुस नृप छता[2] दियौ तोहिं नित दान ।
तऊ कृतघ्नी काल ! तैं नहिं मानत एहसान ॥८१॥
ग्रसित ग्राह-अवरङ्ग-मुख खंडबुँदेल-गयन्द ।
उमँगि उधार्‌यौ धाय, धनि, हरि-इव चंपत-नन्द ॥८२॥
धनि, छत्ता ! तुव खग्ग, धनि, रण-अडग्ग पबि-देह ।
बहु मूँछनवारेनु कों मरदि मिलायौ खेह ॥८३॥
नहिं छत्ता ! परवाह कछु तोहिं शाह के द्वार ।
है तूँ ब्रज-दरबार कौ ऐंड़दार सरदार[3] ॥८४॥

---

[1] "छत्रसाल महाबली, करिहैं सब भली-भली ।"—ऐसा कहकर आज भी बुन्देल-खंड में नित्य प्रातःकाल दूकानदार दूकान खोलते हैं ।

[2] 'छत्रसाल' का अपभ्रंश, जिसे तत्कालीन कवियों ने ही नहीं, महाराज ने स्वयम् भी अपनी कविता में प्रयुक्त किया है ।

[3] संवत् १७६५ में बादशाह बहादुरशाह ने महाराज छत्रसाल को अपना 'मंसबदार' बनाना चाहा, पर उन्होंने यह पद स्वीकार नहीं किया । बोले—कौन किसका मंसबदार होता है ? जिसका नाम विश्वम्भर है, जिसका बाँका विरद है, उसी प्रभु के हम मंसबदार हैं—

छत्रसालनृप-धाक तें बड़े-बड़े थहराहिं।
कहुँ 'छकार' के सुनत हीं छूटि न छक्के जाहिं॥८५॥
असि-भुजंगिनी-अंगना-संग, समर-संयोग।
भोगैं भुज-भुजगेन्द्र तो, छता! छत्रपति-भोग॥८६॥
कहूँ बिपत, कहुँ भयौ तूँ संपत, चंपत-लाल!
दुष्टन-हित करबाल भो, अरु इष्टन-हित ढाल॥८७॥
चंपत[1]! खंडबुँदेल की तैं पत राखनहार।
डूबत हम हिन्दू न कों तुव कुमार कनधार॥८८॥

मनसबदार दोई को काकौ। नाम विसुम्भर सुनि जग बाँकौ॥

[छत्रप्रकाश]

महाराज ने इस प्रसंग पर स्वयम् यह कवित्त रचा है—

जाकौ मानि हुकुम सुभानु तम-नासु करै,
चन्द्रमा प्रकासु करै नखत दराज कौ।
कहै छत्रसाल, राज-राज है भँडारी जासु,
जाकी कृपा-कोर राज राजै सुर-राज कौ॥
जुग्म कर जोरि-जोरि हाजिर त्रिदेव रहैं,
देव परिचार गहैं जाके गृह-काज कौ।
नर की उदारता में कौन है सुधार, मैं तौ,
मनसबदार सरदार ब्रजराज कौ॥

[छत्रसाल-ग्रन्थावली]

[1]प्रलय-पयोधि-उमंड में ज्यों गोकुल जदुराय।
त्यों बूड़त बुन्देल-कुल राख्यौ चंपतराय॥

[छ॰ प्रकाश]

गुरु तेगबहादुर

तेग बहादुर जो किया, किया कौन मुरसीद ?
सर दीना, सार न दिया,[1] साँचा अमर शहीद ॥८९॥

गुरु गोविन्दसिंह

जय अकाल-आनन्द-भव नव मकरन्द-मलिन्द ।
शक्ति-साधना-सिद्धवर, असि-धर गुरुगोविन्द ॥९०॥
पराधीनता-सिंधु मधि डूबत हिन्दू हिन्द ।
तेरे कर पतवार अब, पतधर गुरुगोविन्द ॥९१॥
धर्म-धुरन्धर, कर्म-धर, बल-धर, बखत-बलन्द ।
जयत धनुर्धर, तेग-धर, तेग बहादुर-नन्द ॥९२॥
असि-ब्रत धार्यौ धर्म पै, उमँगि उधार्यौ हिन्द ।
किये सिक्ख तें सिंह सब, धनि-धनि गुरुगोविन्द ॥९३॥
दसवें गुरु के राज में रही हिन्द-पत-लाज ।
औरंगशाही पै गिरी वाहगुरु की गाज ॥९४॥
रहती कहँ हिन्दून की आन बान अरु शान ।
ढाल न होती आनि जो गुरुगोविन्द-कृपान ॥९५॥
संघ शक्ति-ब्रत-मित्र, कै बृषगत बिप्लव मित्र ।
कै पवित्र बलि-चित्र-पट गुरुगोविन्द-चरित्र ॥९६॥
दिखी न दूजी जाति कहुँ, सिक्खन-सी मजबूत ।
तेगबहादुर-सो पिता, गुरुगोविन्द-सो पूत ॥९७॥

---

[1] बाँह जिन्हादी पकड़िए, सिर दीजिए बाँह न छोड़िए ।
गुरु तेगबहादुर बोलिया, धर पइये धर्म न छोड़िए ॥

सिंह-शावक-बलिदान

"माथ रहौ वा ना रहौ, तजैं न सत्य अकाल।"
कहत-कहत ही चुनि गये, धनि, गुरुगोविन्द-लाल[1]॥९८॥

भाई बंदा

मति सोवै सुख-नींद तूँ, अब, सूबा सरहिन्द[2]!
गाजत बंदा सीस पै पठयौ गुरु गोविन्द॥९९॥
करि गुरु गोविन्द-बँदगी बंदा बीर महान।
ककरी-लौं काटे किते मरद मारि मैदान॥१००॥

---

[1] जोरावरसिंह और फ़तहसिंह, जो क्रमशः नौ और सात वर्ष के थे।

[2] इसीने गुरुगोविन्दसिंह के दोनों कुमार जोरावरसिंह और फ़तहसिंह को शहर-पनाह की दीवार में ज़िन्दा चुनवा दिया था।

पाँचवाँ शतक

शिव-वन्दना

दलौ त्रिशूल त्रिशूल-धर ! त्रिभुवन-प्रलयंकारि ।
हर, त्र्यम्बक त्रैलोक्य-पर, त्रिदश-ईश, त्रिपुरारि ॥१॥

दुर्गादास राठौर

तूँ अठौर[1] राठौर-कुल भयौ ठसक की ठौर ।
दुर्जय दुर्गादास ! धनि, धीर-बीर-सिरमौर ॥२॥
धनि, दुर्गा राठौर ! तूँ दल्यौ मुगल-दल-दाप ।
लखियतु मरुथल पै अजौं, तुव निज न्यारी छाप ॥३॥
ठौर-ठौर ठुकराय अरि, धनि, दुर्गा राठौर !
राखी ठकुराई-ठसक, मारवाड़-सिरमौर ! ॥४॥

धुरमंगद

साहस-सो साहस कियौ धुरमङ्गद[2] सतसंध ।
कूदि जरति हथिसार में दिये काटि गज-बंध ॥५॥

---

[1]बादशाह औरङ्गज़ेब ने जब जोधपुर नरेश महाराज यशवन्तसिंह को धोखे से मरवा डाला और उनकी रानी एवं नवजात बालक अजीतसिंह का कोई रक्षक न रहा, तब वीरवर दुर्गादास राठौर ने ही अपने बाहु-बल से राठौर-वंश की मान-मर्यादा अक्षुण्ण रखी थी ।

[2]यह ओरछा (बुन्देलखण्ड) राज्यान्तर्गत 'पलेरा' के जागीरदार थे । यह भारी वीर और साहसी थे । एक बार दिल्ली में, जब यह ओरछा नरेश के साथ वहाँ थे, बादशाह के हथिसार में आग लग गई ।

बिकट बाँक बानैत, त्यौं उद्भट निपट निसाँक ।
धुरमङ्गद की धाँक धौं हनूमान की हाँक[1] ॥६॥

लोकमान्य तिलक

ब्रह्मनिष्ठता ब्यास की, जामदग्न्य कौ ओज ।
दीपत इन दोऊन तें तिलक-सुनैन-सरोज ॥७॥
जाहि भूलि भटकत फिरे हम कुरंग बन भूरि ।
धन्य तिलक ! बोधत करी जन्मजात कस्तूरि[2] ॥८॥
बाल तिलकही में लख्यौ बोध-बिकास अबाध ।
कारागारहुँतें कियौ प्रगट रहस्य अगाध ॥९॥

हाथी जलने-भुनने लगे। किसकी हिम्मत, जो जलती हुई आग में कूद-कर उनके बंधन काटे ? राव धुरमङ्गद से कहा गया कि सिवा आपके कोई यह दुस्साहस का काम नहीं कर सकता। सुनते ही आप हथिसार में कूद पड़े और बावन हाथियों के बन्धन अदम्य साहस के साथ काट डाले ! सुकवि लछीराम ने इनकी वीरता पर कहा है—

[1] "बाँके गढ़-कोटन में, तोपन की चोटन में,
गोलन की ओटन में बिकट अटान की।
पोर-पोर पट्टन में, बाँक की झपट्टन में,
ज्वानन के ठट्टन में कट्टन है प्रान की।
'लछीराम' लक्खत, बुँदेला अलफक्कड़ है,
अक्खड़ कहाँलौं कहौं अकह कहान की।
बाक बाक बानीजू की, ताक सीतारामजू की,
धाँक धुरमङ्गद की, हाँक हनुमान की।"

[2] अर्थात्, 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।'

भावन भारत-भाल कौ तिलक, तिलकहीं एक ।
व्यक्त भयौ जातें सदा शक्ति-भक्ति-ऊद्रेक ॥१०॥

देशबन्धु दास

देसबन्धु ! या सत्य कौ तुमहीं दियौ प्रमान ।
दीनबन्धुही सों मिलत दीनबन्धु भगवान ॥११॥
'भयौ दास बिनुगेह तूँ'—कहत बावरो कौन ?
किते न निज बन्धून के किये हिये निज भौन ॥१२॥
किते अँधेरे दृगनु कों दियौ न ओज-प्रकास ।
कासु न चित-रंजन कियौ तुम, चितरंजन दास ! ॥१३॥
पुलकि असीसत नहि किते लहि मुँहमाँगे दान ।
देसबन्धु-बलि-पौरि पै नित दरिद्र भगवान ॥१४॥

आर्य-देवियाँ

अपनेहीं बल आपनी राखनहारियाँ लाज ।
धनि, आरज-कुल-नारियाँ, जग-नारिनु सिरताज ॥१५॥
जुग जुग अकह-कहानियाँ कहिहै कवि-कुल-गाय ।
धनि, भारत-भट-नारियाँ, रह्यौ सुजसु चहुँ छाय ॥१६॥

कर्मादेवी

कुतुबुद्दीन-गज-गंजिनी, गहन गंजिनी कोय ।
जय कर्मा रण-सिंहनी, गृह गृह जनमौ सोय ॥१७॥

वीरा

धारि पीउ-भुज-माल तब बिलस्यौ नेह रसाल ।
अब हौं बीरा[1] धारिहौं समर शत्रु-सिर-माल ॥१८॥

---

[1] मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की उपपत्नी, जिसने विलास-मग्न

हम तौ छत्राणी कहैं, कहौ कोउ बिगरैल।
पत राखी मेवाड़ की वाही महल-रखैल ॥१६॥

पन्नाधाय

निज प्रिय लाल कटाय जो प्रभु-सिसु[1] लियौ बचाय।
क्यों न होय मेवाड़ में पूजित पन्ना धाय ॥२०॥

दुर्गावती

धन्य सती दुर्गावती,[2] करि गढ़मण्डल राज।
रखी गोंड़वानैं तुहीं खड्ग-धर्म की लाज ॥२१॥

महाराणा को अकबर के क़ैद से छुड़ाकर अपने बाहुबल और अद्भुत पराक्रम से मुग़ल-सेना को परास्त किया था।

[1] महाराणा साँगा का छोटा पुत्र उदयसिंह, जिसे पन्ना नाम की धाय ने पृथ्वीराज के दासी-पुत्र बनवीर की तलवार से अपने पुत्र को कटाकर बचा लिया था।

[2] यह महोबे के चन्देल राजा की पुत्री और गढ़मँडले के गोंड राजा दलपति की रानी थी। दलपति के स्वर्गवासी होते ही अकबर के हुक्म से उज्जैन के नवाब आसफ़ ने गढ़मँडले पर चढ़ाई कर दी। महारानी दुर्गावती ने बड़ी वीरता से नवाब के साथ युद्ध किया और मुग़ल-सेना को परास्त कर खदेड़ दिया।

कविवर लाला भगवानदीन ने अपनी 'वीर क्षत्राणी' में दुर्गावती के मुख से क्या ही ओजस्वी शब्द कहलाये हैं। देखिए—

"छत्रानी हूँ बिन मारे मरे भूमि न दूँगी।
दम रहते न रण-भूमि से पग पीछे धरूँगी ॥
मानोगे मेरी बात तो कुछ मैं भी करूँगी।
अन्याय करोगे तो विकट रूप धरूँगी ॥

बज्र कवच तनु, कंध धनु, कर कृपाण, कटि ढाल।
गढ़मण्डल-दुर्गावती रण-दुर्गा बिकराल ॥२२॥
मत्त मुगल-दल दलमल्यौ, गढ़मण्डल रण ठानि।
धनि, दुर्गा दुर्गावती! रखी तुहीं कुल-कानि ॥२३॥

चाँदबीबी

मुगलनु पै झपटी मनो रणसिंहिनि तजि माँद।
अकबर-मद-मर्द्दन कियो, धनि, सुलताना चाँद ॥२४॥

नीलदेवी

या कटारि सुकुमारि कौ प्रथम चूमि मुख, खान!
तब नीला[1] अधरानु कौ मधु-रस कीजौ पान ॥२५॥
बोलि, चूमिहै फिरि कबौं अधर सिंहिनी-केर॥
शठ! क्षत्राणी सों कबौं कहिहै 'जानी' फेर ॥२६॥

चंदेल की बेटी नहीं तलवार से डरती।
मँडला की महारानी नहीं रण से पछरती।"

[1]यह पंजाब के नूरपुर नामक एक छोटे-से राज्य के स्वामी सूरज देव की वीरपत्नी थीं। एक बार सिपहसालार अबदुश्शरीफ़ ख़ाँ सूर ने सूरजदेव और उसके पुत्र सोमदेव को गिरफ़्तार कर लिया और परम सुन्दरी नीला पर काम-मोहित हो बलात्कार करना चाहा। नीला देवी ने शरीफ़ ख़ाँ को ख़ूब शराब पिला दी और आप भाव-भङ्गी दिखाती हुई गाने लगीं। जब शरीफ़ ख़ाँ मदोन्मत्त हो गया, तब उसकी छाती पर सवार होकर कटार से उसका काम तमाम कर डाला।

प्रथम कटारि-कपोल कौ लहि चुंबन सरसाय[1]।
तब नीला-अधरानु कौ मधु पीजौ उर लाय ॥२७॥
यह कटारि-प्याली भरी रुधिर-मद्य सों तोर।
लै निज जानी-हाथ तें, खान स्वान बरजोर ! ॥२८॥
लंपट ! भेंटन चहत तूँ जिन भुजानु तें धाय।
क्यों न उखारौं, सठ ! तिन्हैं धरि तुव छाती पाय ॥२९॥

लक्ष्मीबाई

तजि कमलासन कर-कमल, गहि तुरङ्ग तरवार।
कुल-कमला[2] काली भई, झाँसी-दुरग-दुआर ॥३०॥
हौं देख्यौ अचरजु अबै, झाँसी-दुरग अपार।
दृग-कमलनि अंगार, त्यौं कर-कमलनि तरवार ॥३१॥
भई प्रगटि रण-कालिका गढ़झाँसी परतच्छ।
सुभट सँहारे लच्छमी, लच्छ-लच्छ करि लच्छ ॥३२॥
जय झाँसी-गढ़ लच्छमी, राजति त्रिबिध अनूप।
गति चपला, दुति चंद्रिका, समर चंडिका-रूप ॥३३॥

---

[1]भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस ऐतिहासिक वीर-घटना पर 'नील-देवी' नाम का एक सुन्दर प्रीति-रूपक और कविवर लाला भगवानदीन ने एक ओजमयी कविता लिखी है। लालाजी का एक पद्य देखिए—

खींचि कटारी निज चोली से, झपटि शरीफहिं दिया पछार।
सब के देखत आनन-फानन छाती में धँसि गई कटार ॥
छाती फाड़ रक्त से रंजित मुख में दिया कटारहिं डाल।
बोली, इसका बोसा लेकर ले मन का अरमान निकाल ॥

[वीर क्षत्राणी]

[2]महारानी लक्ष्मीबाई।

सिंह-वधू

प्रेमालिंगन काल सों करिहै सो ततकाल ।
व्याघ्र-बधू के कंठ जो गेरैगो भुज माल ॥३४॥
थरथर क्यों काँपत अरे, भेंटन में अब मीच ।
सिंह-प्रिया कों लायहै कबहुँ फेरि उर नीच ? ॥३५॥
ह्वैहै छार मलेच्छ ! तैं छ्वै छत्रानी-अंग ।
रमिहै सिंह-किसोर ही सिंह-किसोरी-संग ॥३६॥

सतीत्व-रक्षा

चाहै जो खल करन तुव, भगिनि ! सती-ब्रत-भङ्ग ।
ता हिय हूलि कटारि यह, रँगियौ हाथ सुरङ्ग ॥३७॥

सती-प्रताप

पतनी की पत पालिबे इन्द्रजीत-मृतमाथ ।
हँस्यो हहरि, "ममप्रिया को परखौ सत, रघुनाथ" ! ॥३८॥

दृढ़ता

तजिहैं मरद न मेंड़ निज, रहैं बकत बद्राह ।
करत न कूकर-वृन्द की कछु गयन्द परवाह ॥३९॥
सूर न चूकत दाँव निज, कूर बजावत गाल ।
दीनों चक्र चलाय हरि, रह्यौ बकत सिसुपाल ॥४०॥
नहिं यामें अचरजु कछू, नाहिन नीति-अनीति ।
हँसत सदा खल सुजन पै, नई न कछु यह रीति ॥४१॥

शिकारी

लुकि-छिपि छरछंदनि, अरे, खेलत कहा सिकार !
जियत बाघ की पीठि पै क्यों न होत असवार ? ॥४२॥

लुकि-छिपि मारत, नामरद ! पसु-पंछिनु चहुँफेर ।
पकरि पूँछि ललकारिकैं क्यों न जगावत सेर ? ॥४३॥
अहे अहेरी ! यह कहा, कादर करत अहेर !
क्यों न लपकि ललकारि तूँ पकरि पछारत सेर ? ॥४४॥
नैंक जीभ के स्वादुलगि दीन मीन मृग मारि ।
नाम लजावत सिंह-स्यों, इमि कायरता धारि ॥४५॥
लुकि-छिपि बैठि मचान पै करत मृगनु पै वार ।
जियत सिंह को मूँछ कौ क्यों न उखारत बार ? ॥४६॥
बनत बहादुर बादिहीं दीन मीन मृग मारि ।
क्यों न भरत[1] लौं बाघ के गिनत दाँत मुख फारि ॥४७॥
हम बिनुपछ पच्छीनु पै कहा उठावत हाथ !
अब के आखेटक, अहो ! भये तुमहुँ, जगनाथ ! ॥४८॥
ताकत लंपट तीय तन, धरैं धनुष पै हाथ ।
कहूँ आजुलौं है सुन्यौ मसक मरुत कौ साथ ॥४९॥
सहत व्यर्थ, बिषयी ! यहाँ कानन तार-निदाघ ।
बारबाल बैठाय सँग कहा मारिहै बाघ ॥५०॥

वीरता और सुकुमारता

बस, काढ़ौ मति म्यान तें यह तीछन तरवार ।
जानत नहिं, ठाढ़े यहाँ रसिक छैल सुकुवाँर ॥५१॥
बादि दिखावत खोलि तूँ तुपक तीर तरवार ।
सुरमा मीसी के यहाँ बसत बिसाहनहार ॥५२॥
कवच कहा ये धारिहैं लचकीले मृदुगात ।
सुमनहार के भार तें तीन-तीन बलखात ॥५३॥

---

[1]शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न महाराज दुष्यन्त का पुत्र ।

कै चढ़िलै असि-धार पै, कै बनिलै सुकुवाँर ।
द्वै तुरंग पै एकसँग भयौ कौन असवार ? ॥५४॥
किमि कोमल अँग ओढ़िहैं असहनीय असि-घाय ।
जिन पै गड़ब गुलाब की गड़ि खरौंट परि जाय ॥५५॥
पोंछि पोंछि राख्यौ जिन्हैं नित रमाय रस-रंग ।
समर घाव ते ओढ़िहैं किमि किसलय-से अंग ॥५६॥
क्योंकरि डाइन डाकिनी कड़कड़ हाड़ चबाति ?
इत तौ झिली अँगूर की ओंठनु गड़ि-गड़ि जाति ॥५७॥
जहँ गुलाबहूँ गात पै गड़ि छाले करि देत !
बलिहारी ! बखतरनु के तहाँ नाम तुम लेत ॥५८॥
"झझकत हियैं गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ[1] ।"
या बिधि इत सुकुवाँरता अब न, दई सरसाइ ॥५९॥
जाव भलैं जरि, जरति जो उरध उसाँसनि देह[2] ।
चिरजीवौ तनु रमतु जो प्रलय-अनल कै गेह ॥६०॥

---

[1]छाले परिबे कैं डरनु सकै न हाथ छुवाइ ।
झझकत हियैं गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ ॥

—बिहारी

[2]आड़े दै आले बसन, जाड़ेहूँ की राति ।
साहसु कै-कै नेह-बस, सखी सबै ढिग जाति ॥
नित संसौ हंसौ बचतु, मनों सुइहिं अनुमानु ।
बिरह अगिनि-लपटनु सकतु झपट न मीचु-सचानु ॥
सुनत पथिक-मुँह माह-निसि, लुएँ चलति उहिं गाम ।
बिनु बूझैं बिनुहीं सुनैं, जियति बिचारी बाम ॥

—बिहारी

होउ गलित वह अङ्ग, जेहिं लागति कुसुम-खरोट[1] ।
चिरजीवौ तनु, सहत जो पुलकि-पुलकि पबि-चोट ॥६१॥
राज-ताज कौ भार क्यों सधिहै सिर सुकुवाँर ।
डगकु डगत-से चलत जो निज तनुहीं के भार ॥६२॥

वीरता और विलासिता

तिय-पाइल-रवही तुम्हें किय घायल, रति-पाल !
सुनि धुकार धौंसानु की ह्वैहै कौन हवाल ॥६३॥
जिनकौ-जिय-गाहक बन्यौ अँग-दाहक रति-नाह ।
असि-बाहक क्योंकरि वहै ह्वैहैं सहित उमाह ॥६४॥
कहा भयौ इक दुर्ग जो ढायौ रिपु रणधीर ।
तुम तौ मानिनि-मान-गढ़ नित ढाहत, रति-बीर ! ॥६५॥

कवित्त

ससिमुखी सूखि गई तब तें व्याकुल भई,
बालमु विदेसहुँ कों चलिबो जबै कयो ।
दूध दही श्रीफल रुपैया धरि थारी माहिं ।
माता सुत-भाल जबै रोरि कै टीको दयो ।
ताँदुर बिसरि गयो, बधू सों कह्यौ, लै आउ,
तन तें पसीना छुट्यौ मन तन कों तयो ।
ताँदुर लै आई तिया, आँगन में ठाढ़ी रही,
करके पसारिबे में भात हाथ में भयो ॥

—ग्वाल

[1]मैं बरजी कै बार तूँ, इत कित लेति करौट ।
पँखुरी लगैं गुलाब की परिहै गात खरौट ।

ऐहैं, कहु केहि काम ये कादर काम-अधीर ।
तिय-मृग-ईछनहीं जिन्हैं हैं अति तीछन तीर[1] ॥६६॥
छिन देखत मुख आरसी, छिन साजत सिंगार ।
कहा कटैहैं सीस ये बने-ठने सरदार ॥६७॥
अन्त न ऐहैं काम ये रसिक छैल सरदार ।
रहि जैहैं दरपन लियें सजत-साज-सिंगार ॥६८॥
त्यागि सकत नहिं नैक जे चटक-मटक की सान ।
कहा छाँड़िहैं युद्ध में ते अजान प्रिय प्रान ॥६९॥
चटक-मटकही तें तुम्हैं नाहिं नैक अवकास ।
अवसर पै करिहौ कहा तुम बिलासिता-दास ? ॥७०॥
सुमन-सेज सँग बाल तुम पौढ़े करि सिंगार ।
को भीषम-सर-सेज की अब पत-राखनहार ॥७१॥
उत गढ़-फाटक तोरि रिपु दीनीं लूट मचाय ।
इत लंपट ! पट तानि तैं पर्‌यौ तीय उर लाय ॥७२॥
उत लूटत रिपु राज, इत दौउ मत्त रति-माहिं ।
आसव अजहूँ नाहिँ छुटै, त्यों गर बाहीं नाहिं ॥७३॥
मान छुट्यौ, धन-जन छुट्यौ, छुट्यौ राजहूँ आज ।
पै मद-प्याली नहिं छुटी, बलि, बिलासि-सिरताज ! ॥७४॥
आवत आप विनास तहँ, जहँ बिलसत सुबिलास ।
एक प्राण द्वै देह मनु उभय बिलास बिनास ॥७५॥
जित बिनास आवन चहत, पठवत प्रथम बिलास ।
मत बिलास मुँह लाइयौ, ऐहै नतरु बिनास ॥७६॥

---

[1]लागत कुटिल कटाच्छ-सर, क्यों न होहिं बेहाल ।
कढ़त जु जियहिं दुसाल करि तऊ रहत नटसाल ॥
—बिहारी

नयन-बानहीं बान अब, भ्रुवही बङ्क कमान ।
नारकीय रति-केलि हीं मानत समर प्रमान ॥७७॥
निदरि प्रलय बाढ़त जहाँ बिप्लव-बाढ़-बिलास ।
टापतही रहि जात तहँ टीम-टाम के दास ॥७८॥

कवि-पतन

बरषत विषम अँगार चहुँ, भयौ छार बर बाग ।
कबि-कोकिल कुहकत तऊ नव दंपति-रति-राग ॥७९॥
सुख-सम्पति सब लुटि गयौ, भयौ देस-उर घाय ।
कंकण-किंकिणि की अजौं सुनत झनक कविराय ! ॥८०॥
रही जाति जठरागि तें भभरि भाजि अकुलाय ।
तुम्हैं परी अभिसार की अजहुँ हाय, कवि-राय ! ॥८१॥
तिय-कटि-कृसता कौ कविनु नित बखान नव कीन ।
वह तौ छीन भई नहीं, पै इनकी मति छीन ॥८२॥
कहत अकथ[1] कटि छीन, कै कनक-कूट कुच पीन ।
छीन-पीन के बीच वै भये आज मति-हीन ॥८३॥
नीति-बिहूनो राज ज्यौं, सिसु ऊनो बिनु प्यार ।
त्यौं अब कुच-कटि-कवित बिनु सूनो कवि-दरबार ॥८४॥
जागत-सोवत, स्वप्नहूँ, चलत-फिरत दिन-रैन ।
कटि-कुच पै लागे रहैं इन कवीनु के नैन ॥८५॥
आज-कालि के नौल कबि सुठि सुन्दर सुकुवाँर ।
बूढ़े भूषण पै करैं किमि कटाच्छ-मृदु-वार ॥८६॥

---

[1]बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किये नीठि ठहराइ ।
सूछम कटि परब्रह्म-लौं अलख लखी नहि जाइ ॥
—बिहारी

वारमुखी में वार अब, युवति-मान में मान।
रँग अबीर में बीर त्यों कहियतु कोस-प्रमान ॥८७॥
कमल-हार, झीने बसन, ललित बेनु अब छाँड़ि।
मौलि-माल, बज्जर कवच, तुमुल-सङ्ख कवि, माँड़ि ॥८८॥
तजि अजहूँ अभिसारिका, रतिगुप्तादिक, मन्द !
भजि भद्रा, जयदा सदा शक्ति, छाँड़ि जगद्वन्द ॥८९॥
करत किधौं उपहास, कै ठकुरसुहाती आज।
कहा जानि या भीरु कों कहत भीम, कविराज ॥९०॥
अब नख-सिख-सिङ्गार में, कवि-जन ! कछु रस नाहिँ।
जूठन चाटत तुम तऊ मिलि कूकर-कुल माहिँ ॥९१॥
मरदाने के कवित ये कहिहैं क्यों मति-मन्द।
बैठि जनाने पढ़त जे नित नख-सिख के छन्द ॥९२॥

व्यर्थ चेष्टा

काहिँ सुनावत बीररस, बृथा करत चित खेद।
हैं ये रसिक सिंगार के सुनत नायिका-भेद ॥९३॥
कहा बकत इत मूढ़ ! तूँ, क्यौं न रहत गहि मौन।
सुनिहै सरस समाज में निरस युद्ध-रस कौन ? ॥९४॥

अनहोनी

बँधवाये सुत सिंह के बिनु रद-नख करवाय।
सस-सृगाल-हाथिन, अहो ! भलो नाथ, यह न्याय ॥९५॥
चूमत चरण सियार के गज-मद-मर्दन सेर।
झपटत बाजनु पै लवा, अहो ! दिननि के फेर ॥९६॥
दई ! दिननि के फेर तें भई औरही साज।
हुते सिलहखाने जहाँ, तहँ मयखाने आज ॥९७॥

भलो, नाथ, लीला रची ! भलो अलाप्यौ राग !
नर ओढ़ी सिर ओढ़नी, नारिन बाँधी पाग ॥६८॥

भारत-पताका

जाहि देखि फहरत गगन गये काँपि जग-राज ।
सो भारत की जय-ध्वजा परी धरातल आज ॥६६॥
रवि-रथांग सों झगरि जो खेलति ही फहराय।
वह भारत की जय-ध्वजा लुठित भूमि पै हाय ॥१००॥

*

छठा शतक

नाद-वन्दना

सहस - फनी - फुङ्कार औ काली - असि - झङ्कार ।
बन्दौं हनु-हुङ्कार त्यों राघव-धनु-टङ्कार ॥१॥

वे और ये

जिनकी आँखन तें रहे बरसत ओज-अँगार ।
तिनके बंसज झेंप तें दृग झाँपत सुकुवाँर ॥२॥
रहे रंगत रिपु-रुधिर सों समर केस निरवारि ।
तिनके कुल अब हीजरे काढ़त माँग सँवारि ॥३॥
धारत हे रण-भूमि जे रिपु-मुंडनु कौ हार ।
तिनके कुल के करत ये आजु सुमन-सिंगार ॥४॥
रह्यौ सदा जिन हाथ कौं यार एक हथयार ।
लखियतु ललना हेतु अब तिन हाथनु हित-हार ॥५॥
झूमत हे जहँ मत्त ह्वै सहजसूर दिन-रैन ।
लटकि लजीले छैल तहँ मटकि नचावत नैन ॥६॥

कितना भारी अन्तर !

मरत पूत उत दूध बिनु, बिलपत बिकल किसान ।
इत बैठ्यो, सठ ! करत तैं सँग कामिनि मद-पान ॥७॥
वृष-रबि-आतप-तपि कृषक मरत कलपि बिनु नीर ।
इत लेपत तुम अरगजे, बिरमि उसीर-कुटीर ॥८॥
उत हाकिम रैयत-रकत करत पान उर चीर ।
इत पीवत तैं मद, अरे नृपति मनोज-अधीर ! ॥९॥

उत आतप अरु तपत भू, इत उसीर घनसार।
रैयत राजा में, कहौ, ह्वै किमि सहकार ॥१०॥
उत भूखे क्रन्दन करत कलपि किसान मजूर।
इत मसनद पै मद छके सुनत अलाप हुजूर ॥११॥

निर्जीव राजपूत

दलित सीस पै बाँधिकैं रजपूती की पाग।
करत, निलज ! नट-लौं अजौं बल-बिक्रम को स्वाँग ॥१२॥
तुम रजपूतनु तें कहा रजपूती की आस ?
प्रमदा-मदिरा-माँस के भये आजु तुम दास ॥१३॥
कुल में दाग लगाय, धिक ! बन्यौ फिरत रजपूत।
गरि-गरि गिर्यौ न गर्भ तें कादर, क्लीब, कुपूत ! ॥१४॥
मजबूती तौ कहुँ नहीं, है सब काम निकाम।
कहिबे कों बस रहि गयौ रजपूतौ कौ नाम ॥१५॥
लखि जिनके मजबूत भुज काँपत है यम-दूत।
या भारत में अब कहाँ वे बाँके रजपूत ॥१६॥
कहा तुम्हें तरवार सों, है सब सूखी सान।
मूठ सुनहरी चाहिए, और मखमली म्यान ॥१७॥
कुल-कलंक कादर कुटिल, व्यभिचारी बिनलाज।
करत दुष्ट दावा तऊ रजपूती कौ आज ॥१८॥
चाटत जग-पग स्वान-ज्यौं, फिरत हिलावत पूँछ।
बनत कहा अब मरद तैं, यौं मरोरिकैं मूँछ ॥१९॥

धिक्कार

तो देखत तुव भगिनि के खैंचत पामर केस।
जानि परत, या बाहु में रह्यौ न बल कौ लेस ॥२०॥

रे निलज्ज ! जिनके अछत, अरिहिं झुकायौ माथ ।
अब तिन मूँछनु पै कहा पुनि-पुनि फेरत हाथ ॥२१॥
निजचोटी-बेटीन की सके राखि नहिं लाज ।
धिक धिक, ठाढ़ी मूँछ ये, धिक धिक, डाढ़ी आज ॥२२॥
भखत माँसु, मदिरा पियत, ताकत पर-तिय-द्वार ।
धिक, तेरो जीवन-मरन, लंपट चोर लबार ! ॥२३॥
मरिहै नहिं कबहूँ कहा, धँसत न जो रण माँझ ।
उपज्यौ कूख कुपूत तैं, रही न क्यों बिधि ! बाँझ ॥२४॥
भाज्यौ पीठि दिखाय यौं, धँस्यौ न जूझन-माँझ ।
तो सम कादर-जनन तें, भलि छत्रानी बाँझ ॥२५॥
जरति जाति जठरागि तें, जहँ-तहँ हाहाकार ।
देत भोज तैं नित तऊ साजि राज-दरबार ॥२६॥
देखि दीन-दुर्दलनहूँ उठत न जाकौ बाहु ।
ग्रसतु तासु सरबस-ससिहिं पर-प्रताप-बल-राहु ॥२७॥
निजमुख निज कथनी कथत, नितप्रति सौ-सौ बार ।
भट तें भाट भये भले बिरद-पुकारनहार ॥२८॥
अछत कर्ण, कृप, द्रोण त्यौं भीष्म, पार्थ अरु भीम ।
खिंचि पंचाली-पट रह्यौ, धिक बल-बीरज-सीम ॥२९॥

आज कहाँ ?

पराधीनता-जलधि में बूड़त सुकृत-समाज ।
कहाँ उधारक धरम कौ, तारक आज जहाज ॥३०॥
दै हाँके हाँके हठी, रण-थल सुभट अजैत ।
निपट निसाँके अब कहाँ, बल-बाँके बानैत ॥३१॥
कहँ अब रण-सरि-पैरिबो, कहँ बल-बिक्रम-तेज ।
रवि-मण्डल-भेदन कहाँ, कहँ पौढ़न सर-सेज ॥३२॥

कहँ प्रताप, कहँ दाप वह, कहाँ आन, कहँ बान ? ।
कहाँ एँड़, कहँ मेंड़ अब, है सब सूखी सान ॥३३॥
नहिं बल, नहिं बिक्रम कहूँ, जहँ-तहँ दीन अधीन ।
भई भूमि यह आजु का सौंचेहुँ बीर-बिहीन ॥३४॥
अब, कोयल ! वह ऋतु कहाँ, कहँ कूजन तरु-डार ? ।
कहँ रसाल-रस-बौर त्यौं, कहँ बन-बिहिंग-विहार ॥३५॥
धीर बीर-बर वै कहाँ, हठ-हमीर जग-बीच ।
अब तौ इत नित बढ़ि रहे निलज नराकृति नीच ॥३६॥

परशुराम-स्मरण

जित देखौ तित बढ़ि रहे कुल-कुठार भुवि-भार ।
क्यों न होत पुनि आजु वह परसुराम-अवतार ॥३७॥
देखि-देखि मद-चूर ये कादर, कूर कुसाज ।
जामदग्न्य के परसु की आवति सुधि पुनि आज ॥३८॥

भावी इतिहास

देखि दास-ही-दास चहुँ, इमि क्यों होत निरास ।
पढ़िहौ तुम कछु औरही या युग कौ इतिहास ॥३९॥
ह्वैहौ पुनि स्वाधीन तुम, सदा न रहिहौ दास ।
या युग के बलि-दान कौ लिखियौ तब इतिहास ॥४०॥

व्यर्थ युद्ध

नाहिं धर्म, नहिं देश-हित, नाहिं जाति कौ हेत ।
निज-निज स्वारथ पै, अहो ! रँगत रकत सों खेत ॥४१॥
करत शक्ति-व्यय व्यर्थ जे बिनु बिबेक बिनु हेतु ।
मेटत ते सुख-शान्ति कौ सहज सनातन सेतु ॥४२॥
परधरती परतीय पै चेतहुँ भये अचेत ।
कटे न केते सूरमा, रँगे न केते खेत ॥४३॥

फूट

फूट्यौ, पै टूट्यौ न जो, भयौ कौन अस मर्द।
जुग के बिलगेहूँ कहूँ रही खेल में नर्द ॥४४॥
राजपूत, सिख, मरहठे, नठे बुँदेल, बघेल।
अरी फूट ! या देस में रच्यौ कौन यह खेल ॥४५॥
मेरु-दंड या देस कौ कुलिस-खंड अति चंड[1]।
सहजैं, हा ! गृह-फूट तें भयौ टूटि सतखंड ॥४६॥
भर्यौ विभीषण-पुञ्ज तें यह भारत-ब्रह्माण्ड।
क्यों न होय गृह-भेद तें गृह-गृह लंकाकाण्ड ॥४७॥
है जहँ 'आठ कनौजिया नौ चूल्हे' की रीति।
तहाँ परस्पर प्रीति की कहा पढ़ावत नीति ॥४८॥
हैं ठाढ़े जा डार पै, काटत सोइ मतिमन्द।
घर-घर भारत-भाग तें भरे भूरि जयचन्द ॥४९॥

---

[1]जग में घर की फूट बुरी।
घर की फूटहिं सों बिनसाई सुबरन-लङ्क पुरी ॥
फूटहिं सों सब कौरव नासे भारत-युद्ध भयौ।
जाकौ घाटो या भारत में अबलौं नहिं पूजयौ।
फूटहिं सों जयचन्द बुलायौ जवनन भारत-धाम।
जाकौ फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम।
फूटहिं सों नवनंद बिनासे, गयौ मगध कौ राज।
चन्द्रगुप्त कों नासन चाह्यौ आपु नसे सहसाज ॥
जो जग में धन मान और बल आपुन राखन होय।
तौ अपुने घर में भूलेहूँ फूट करौ मति कोय ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

विजयादशमी

जहाँ पराजय हो बिजय मानत सभ्य-समाज।
कहा जानि आयौ तहाँ फेरि दसहरो आज ॥२०॥
नीलकंठ[1] तन पेखि धरु नीलकंठ-सुभध्यान।
तुमहूँ परहित-हेत यौं करौ हलाहल पान ॥२१॥

अब समय कहाँ ?

लियौ तोरि दृढ़ गढ़ जबै, कहा सोचि अब जात ?
दीप सँजोवत तब कहा, जब ह्वै गयौ प्रभात ॥२२॥
आजु-कालिह कब तें करत, भये न कबहुँ तयार।
घलाघली उत ह्वै रही, इत माँजत हथयार ॥२३॥
अब-अब तौ कब तें कहत, सध्यौ न अबलौं तंत्र।
वह 'अब' कब ऐहै, जबै ह्वैहै सिद्ध सुमंत्र ॥२४॥

गीता-रहस्य

अनासक्ति सों जोरिये कार्यकर्म-अनुरक्ति[2]।
ज्यौं-त्यौं करि आराधिये, सुचित साधिये शक्ति ॥२५॥
'अद्वैतामृत-वर्षिणी' मानत सुधी-समाज।
जानत हम-से अज्ञ पै गीता राष्ट्र-जहाज ॥२६॥

अयोग्य नरेश

अपने ही तनु की न जौ तुम पै होति सँभार।
झूठमूठ फिरि बनत क्यों प्रजा-राज-रखवार ? ॥२७॥

---

[1]विजयादशमी के दिन नीलकंठ पक्षी का दर्शन शुभ और मांगलिक माना जाता है।

[2]तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। [गीता

रैयत-भार सँभारिहैं किमि सुकंध सुकुवाँर !
जीवन हू जब ह्वै रह्यौ तुम कों भार पहार ॥५८॥
जिमि आँधर-कर आरसी, जिमि बानर-कर बीन ।
तिमि रैयत अवरेखिए नृपति-प्रमत्त-अधीन ॥५९॥
नहिं चाहक अपनेनु के, नहि गाहक-रखवार ।
ये तौ रसिक बिदेस के रुचिर रिझावनहार ॥६०॥
या बसुधा कों भाग भरि भोगत भुज मजबूत[1] ।
कहा भोगिहैं भूमि ये कादर कूर कुपूत ॥६१॥
शायर औध-नवाब[2] की करूँ कहा तारीफ़ ।
राज-काज कों पीठ दे सोचत बैठि रदीफ ॥६२॥
नहिं बाँधत बटपार, जे रैयत करत खराब ।
बाँधत बैठ्यौ क़ाफ़िया, वाजिदअली नवाब ॥६३॥
भूलेहुँ कबहुँ मदान्ध कों मति दीजै अधिकार ।
मतवारे के हाथ कहुँ सौंपत कोउ हथियार ॥६४॥

गो-नाश

गो-धन, गोवर्द्धन-धरन, गोकुलेस, गोपाल !
रँगत-रँगत गो-रकत सों भई भूमि तुव लाल ॥६५॥
लाल ! तिहारी लाड़िली, तुव गोकुल की गाय ।
कटति आजु गोपाल ! हा ! क्यों न बचावहु धाय ॥६६॥
चोरि-चोरि चाख्यौ जहाँ माखन, गोकुल-राज !
टुक देखौ, गो-रुधिर की बहति धार तहँ आज ॥६७॥

---

[1]वीरभोग्या वसुन्धरा ।

[2]लखनऊ के सुप्रसिद्ध रसिक नवाब वाजिदअलीशाह, जो कविता में अपना तख़ल्लुस 'अख़तर' रखते थे ।

गोरत हे गोपाल ! तुम जहँ केसर-घनसार ।
टुक, देखो, तहँ आजु हरि ! बहति गो-रुधिर-धार ॥६८॥
दंडक-बन मुनि-अस्थि लखि दैत्य-दलन-प्रन-कीन[1] ।
देखत गो-बध नाथ ! क्यों आजु मौन गहि लीन ? ॥६९॥

क्या से क्या

जहँ कीनों, गोपाल ! तुम नित गो रस-छिरकाव ।
देखि आजु मरुभूमि-सो क्यों न होत हिय घाव ? ॥७०॥
जहँ लुढ़कायौ, लाल ! तुम नित गो-रस, गोपाल !
जलहू आजु मिलै न तहँ, ग्वाल-बाल बेहाल ॥७१॥

जगत् का अमिथ्यात्व

परखत जीवन जौहरी प्राण-रत्न जहँ गूढ़ ।
ता साँचे संसार को कहत असाँचो मूढ़ ॥७२॥
जा जग की रोटीन तें सूझत अलख अनन्त ।
मिथ्या ताकों कहत ये निलज निठल्ले संत ॥७३॥

कादर साधु-संत

कनक-कामिनी में पगे, रँगे राग में आज ।
इन सठ मठधारीनु पै तौहूँ गिरति न गाज ॥७४॥

---

[1]अस्थि-समूह देखि रघुराया । पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
जानतहूँ पूछिय कस स्वामी । सबदरसी तुम अंतरजामी ॥
निसिचर-निकर सकल मुनि खाये । सुनि रघुनाथ नयन-जल छाये ॥
निसिचर-हीन करउँ महिँ, भुज उठाय पन कीन ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाय-जाय सुख दीन ॥
[रामचरित-मानस]

कथत मथत बेदान्त, पै रचत मंद छर-छंद ।
कहु, किमि कामानंद ये ह्वैहैं रामानंद ॥७५॥
कनक-कामिनी-दास ये साधु स्वारथानन्द ।
रामदास बिरले कहूँ, आज आतमानन्द ॥७६॥
फूँकत जे गाँजो, अभख भखि, भभूतिया भूत ।
लोलुप लंपट धूत ते बने फिरत अवधूत ॥७७॥

त्याग और आत्मानुभूति

'त्याग-त्याग' कत बकत रे, राग-त्याग अति दूर ।
त्याग-तागही तें बँधे यती सती अरु सूर ॥७८॥
लेत आत्मा-अनुभूति-रस सूर सबल स्वाधीन ।
सके न करि कबहूँ कहूँ आत्म-लाभ बलहीन[1] ॥७९॥

अछूत

अपनावत अजहूँ न जे अपनेहिं अंग अछूत ।
क्योंकरि ह्वैहैं छूत वै करि कारी करतूत ॥८०॥
जिन पायनु तें जान्हवी भई प्रगटि जग-पूत ।
तिनहीं तें प्रगटे न ये तुम्हरे अनुज अछूत ? ॥८१॥
सुर-सरि औ अंत्यज दुहूँ अच्युत-पद-संभूत ।
भयौ एक क्यों छूत, औ दूजो रह्यौ अछूत ? ॥८२॥
जौ दोउनु को एकही कह्यौ जनक जग-बन्द ।
तौ सुर-सरि तें घटि कहा यह अछूत, द्विज मन्द ! ॥८३॥
महा असिव हू सिव भयौ जाहि सीस पै धारि ।
छुअत न तासु सहोदरनि, रे द्विज ! कहा बिचारि ॥८४॥

---

[1]नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।

—उपनिषद्

मंगला और अमंगला

हाट-बाट नित बैठि निज जोबन बेचनवारि ।
कही जाति या देस में आज 'मंगला' नारि ॥८५॥
बिधवा तरुण-तपस्विनी असि-ब्रत-पालनहारि ।
कही जाति या जाति में, हा ! 'अमंगला' नारि ॥८६॥

बाल-विधवा

जहाँ बाल-बिधवा-हियें रहे धँधकि अंगार ।
सुख-सीतलता कौ तहाँ करिहौ किमि संचार ? ॥८७॥
भलैं सुधा सींचौ तहाँ, फल न लागिहै कोय ।
जहाँ बाल-बिधवान कौ अश्रु-पात नित होय ॥८८॥
सुर-तरुहूँ के फरन की मति कीजौ उत आस ।
जाय बाल-बिधवा निकसि जित ह्वै भरति उसाँस ॥८९॥

श्वेत और श्याम

उन प्यारे गोरेनु कौ गाहक सब संसार ।
हम न्यारे कारेनु कौ कारो कान्ह अधार[1] ॥९०॥
तन कारो, कारो कुदिन, कारो कुल, गृह, गोत ।
पै कुरूप कारेनु कौ हियो न कारो होत ॥९१॥
कौन काम के सेत घन, नीरस निपट निसार ।
कारेहीं घन स्याम-लौं बरसावत रस-धार ॥९२॥

---

[1] गोरी कों गोरे लागत जग अतिही प्यारे ।
मो कारी कों कारे तुम नयननु के तारे ॥
उनकों तो संसार है, मो दुखिया कों कौन ।
कहिये कहा विचार है, जो तुम साधी मौन ॥
—सत्यनारायण कविरत्न

दीन और दीनबन्धु-शरण

चूसि गरीबनु कौं लुहू किये गुनाह दराज ।
गहत गरीब-निवाज के कहा जानि पग आज ॥९३॥
दीननु देखि घिनात जे, नहिं दीननु सों काम ।
कहा जानि ते लेत हैं दीनबन्धु कौ नाम ॥९४॥
दीन-हीन जानैं कहा सेइ राज-दरबार ।
उनकैं तौ आधार बस दीनबन्धु कौ द्वार ॥९५॥

ऐसा क्यों ?

कलपावत कबतें हमैं, धारि निठुरता-रूप ।
करुणाधन, तुमहूँ भये आज-काल्हि के भूप ? ॥९६॥
बिनु अंगनु कीनों हमैं, बिनु बल बिनु हथियार ।
क्यों निरदई दई ! दई बिपत एकई बार ॥९७॥

निवेदन

होहिं न हरि, जा देस में, वज्रपाणि, बलि-सीस ।
तावनिता ललनान कों, तहँ न दीजियौ ईस ॥९८॥
'है स्वदेश मख-वेदिका, अरु आहुति मम प्रान ।'
कोटि जन्महूँ, नाथ जनि जावै यह अभिमान ॥९९॥
नहिं चाहैं साम्राज्य-सुख, नाहिं स्वर्ग-निर्वान ।
जन्म-जन्म निज धर्म पै हरषि चढ़ावौं प्रान ॥१००॥

*

*

सातवाँ शतक

केसरी-वन्दना

गौरी-कर-लालित सदा, पसुपति-पालित जोय ।
दनुज-दमन दारुन दरौ दुरित केसरी सोय ॥१॥

विविध

किये भीष्म पै अनल--लौं क्यों हरि, नैन रिसाय ?
जानत हौं ब्रज-दौ वहै दियो दृगनि दरसाय[1] ॥२॥
जाव भलैं कुरुराज पै धारि दूत-वरबेश ।
जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ, केशव ! द्रौपदि-केश ॥३॥
ब्योम-बान सररात, औ तड़कि तोप तररात ।
सुथिर अथिर थहरात त्यौं, दुर्ग दीह अररात ॥४॥
काम न आये आजु लौं ह्वै अनाथ-रखवार ।
दिये तोहिं भुजदंड ये, कहा जानि करतार ॥५॥
लेखेंही ऋतु लेखियतु, नितप्रति ग्रीषम साथ ।
जठर-ज्वालतें जरि रहे हम अनाथ जगनाथ[2] ॥६॥

---

[1] 'दावानल-पान' के संबंध की महाकवि बिहारी की सूक्ति—

सखि, सोहति गोपाल के उर गुञ्जन की माल ।
बाहर लसति मनों पियें दावानल की ज्वाल ॥

[2] पत्राहीं तिथि पाइयत, वा घर के चहुँपास ।
नितप्रति पून्योही रहति, आनन-ओप-उजास ॥

—बिहारी

कोरी भोरी भावना ऐहे काम न आजु ।
बिनु साधैं सुचि साधना नहिं सरिहै कछु काजु ॥७॥
बल साँचो निज बाहु-बल, सीस दान सतदान ।
त्यों साँचो सुठि ध्यान इक पारथ-सारथि ध्यान ॥८॥
बिना मान तजि दीजियौ स्वर्गहुँ सुकृत-समेत ।
रहौ मान तौ कीजियौ नरकहुँ नित्य निकेत ॥९॥
अंतहुँ अरिहिं न सौंपियौ, करियौ प्रण-प्रतिपाल ।
निज भावँरि की भामिनी, निज कर की करवाल ॥१०॥
बीरबधू ! तुव सौत वह बिजय-बधू नवबाल ।
तासु गरैं गेरित तऊ कहा जानि रति-माल ॥११॥
अमित भीत अरि-नारियाँ सगबग भाजति जाहिं ।
आगें देखति नाहिं, त्यौं पाछें हेरति नाहिं ॥१२॥
दनुज दलन सौमित्रि-सर, मारुति-मुष्टि प्रहार ।
भीष्म-अतुल बिक्रम, तिहूँ ब्रह्मचर्य-ब्रत सार ॥१३॥
दृगनि ओज-लाली लसै, रुधिर-पियाली हाथ ।
काल-नटी काली किलकि नटति कपाली साथ ॥१४॥
साधत साधन एकहीं तजि अनेक बुधि-सीम ।
धनुष-सिद्ध अर्जुन भयौ, गदा-सिद्ध भो भीम ॥१५॥
छुद्र बातहूँ बृहत की है जग जानन-जोग ।
बन सिंहन के खौंद[1] हूँ खोजत-नापत लोग ॥१६॥
चित्र आर्य-साम्राज्य कौ सक्यौ न कोउ उतारि ।
चीन-ग्रीसहूँ के गये चतुर चितेरे[2] हारि ॥१७॥

---

[1] बुन्देलखण्डी शब्द; पैरों के चिह्न ।

[2] ह्वैन्सांग, फ़ाहियान, इत्सिङ्ग इत्यादि चीन के एवं मेगस्थानीज़ आदि ग्रीस के यात्री ।

है सबलनु कों सूल जो करत निबल-प्रतिपाल ।
बीर-जननि कौ लाल सो अहै धर्म की ढाल ॥१८॥
करै जाति स्वाधीन जो, साँचो सोइ सुपूत ।
यौंतौ, कहु, केते नहीं कायर कूर कुपूत ॥१९॥
फरति न हिम्मत खेत में, बहति न असि-ब्रत-धार ।
बल-बिक्रम की बोरियौं बिकति न हाट-बजार ॥२०॥
ऐहैं याही ठौर हम, कहा फिरें जग होत ।
जैसे पंछी पोत कौ उड़ि आवत पुनि पोत[1] ॥२१॥
देस रसातल जाय किन, इत नित नौल बसंत ।
इन कवीनु की कामिनी रही लाय उर कंत ॥२२॥
जिन समसेरन तें कबौं कटे दुवन-सिर, हाय !
तिन ते काटत घास तुम अब हँसिया गढ़वाय ॥२३॥
को न अनय-मग पग धर्यौ लहि इहि कुमति-कुदान ?
न्याय-पतित भे भीष्महूँ भखि दुर्योधन-धान ॥२४॥
अथयौ सो अथयौ, न पुनि उनयौ भीषम-भान ।
आर्य-शक्ति-जय-पद्मिनी परी तबहिं ते म्लान ॥२५॥
तिथि-संवत पुरखानु के सुनि चौंकत चकराय ।
मनु गाथा-सत-सृङ्ग की तुम्हैं सुनाई आय ॥२६॥
भीरु छिपावत जीव ज्यौं, कृपण छिपावतु दाम ।
सूर छिपावत शक्ति त्यौं, चतुर छिपावतु नाम ॥२७॥
यथा राम-रावण-समर नीरद-नाद-विहीन ।
भारत-युद्ध अपूर्ण त्यौं बिना कर्ण प्रण-पीन ॥२८॥

---

[1] मेरो मनु अनत कहाँ सचुपावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥
—सूरदास

'जराधीन अंगछीन हौं, दीन, दंत-नख-हीन ।'
नहि ऐसी चिन्ता कहूँ कबहुँ केहरी कीन ॥२६॥
या कलि में बलि-धर्म कौ कियौ दोइ उद्धार ।
गहिरवार पंचम[1] बली, अरु जगदेव पवाँर[2] ॥३०॥
रचि-रचि कोरी कल्पना बहुत जल्प ना, मूढ़ !
सहज सती अरु सूर कौ गति-रहस्य अति गूढ़ ॥३१॥
निबल, निरुद्यम, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास ।
जड़, कादर करि देत है नरहिं अंधविस्वास ॥३२॥
रकत-माँस सब भखि लियौ, पंजर डार्‌यो तोरि ।
कहा मिलैगो तोहिं अब, निर्दय ! हाड़ चिचोरि ॥३३॥
भाजत भग्गुल भभरि जहँ, खुलि खेलत तहँ वीर ।
जरत सुरासुर जाहिं लखि, पियत ताहिं शिव धीर ॥३४॥
कठिन राम कौ काम है, सहज राम कौ नाम ।
करत राम कौ काम जे, परत राम सों काम ॥३५॥
मतवारे सब ह्वै रहे मतवारे मत माहिं ।
सिर उतारि सतधर्म पै कोउ चढ़ावत नाहिं ॥३६॥

---

[1]काशीश्वर वीरभद्र गहिरवार का सबसे छोटा पुत्र जगदास था। इसे पंचम भी कहते हैं। जगदास ने अपने भाइयों से अपमानित होकर विन्ध्यवासिनी देवी को अपना सिर चढ़ाना चाहा, पर देवी ने प्रकट हो तलवार पकड़ ली और इसे वरदान दिया कि "जा, तेरी जय होगी और तेरे वंशधर मध्यभारत पर राज्य करेंगे।" पंचम ने जो खड्ग अपना सिर काटने के लिए उठाया था, वह उसके सिर पर लगा और उससे रक्त की एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। इसी बूँद के गिरने के कारण पंचम के वंशज 'बुंदेला' कहे जाते हैं।

[2]जगदेव पँवार ने अपने स्वामी के प्राण बचाने के लिए स्वयं

तजि देती जौपै कहूँ, कोइल काग-कुठौर ।
तौ होती पच्छीनु में साँचेहुँ तैं सिरमौर ॥३७॥
सिंह-सावकनु के भये शिच्चक आजु शृगाल ।
एइ सिखैहैं अब इन्हें गज-मर्दन कौ ख्याल ! ॥३८॥
'हम गंगोदक, हम गगन, हम दीपक, हम भान ।'
यही तुम्हें लै बूड़िहै कोरो-कुल-अभिमान ॥३९॥
जद्‌पि रोष दोऊ करति लखि-लखि परदृग लाल ।
तद्‌पि कहाँ खल-खंडिनी, कहाँ खंडिता बाल ॥४०॥
चूसि गरीबनु कौ रकत करत इन्द्र-सम भोग ।
तउ 'गरीब-परवर' उन्हें कहत अहो, ये लोग ! ॥४१॥
उत ते तौ हाड़ा[1] हठी, इत बुँदेल[2] बलवान ।
अरि-अनीक की गेंद कै रच्यौ चारु चौगान ॥४२॥

अपना सिर देवी को चढ़ा दिया था ।

[1]बूँदी के महाराज हाड़ा छत्रसाल । कविवर भूषण, मतिराम और लाल ने इनकी वीरता के कई पद्य लिखे हैं । कविवर मतिराम औरङ्ग-जेब-दारा-युद्ध के अवसर पर इनकी वीर-गति पर लिखते हैं—

"औरँग दारा जुरे दोउ युद्ध, भये भट क्रुद्ध विनोद विलासी।
मारू बजै 'मतिराम' बखानैं भई अति अस्त्रन की बरखा-सी ॥
नाथ-तनै तिहिं ठौर भिर्‌यो जिय जानिकैं छत्रिन कों रनकासी ।
सीस भयौ हर-हार-सुमेरु, छता भयौ आपु सुमेरु कौ बासी ॥"

एक पद्य कविराज भूषण का भी—

चले चंदबान घनबान औ कुहूकबान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो ।

बनत क्रोध-जित निबल नर धारि छमा अभिराम ।
करत कलंकित क्लीब ज्यौं ब्रह्मचर्यब्रत-नाम ॥४३॥
उपमा भट-भुजदंड की तो सँग जा दिन दीन ।
तबही तें, गज-सुण्ड ! तैं थिरता पलहुँ लही न ॥४४॥
धर्म-निरत-सँग द्वेष कै कहाँ बचैहै प्रान ?
दुर्वासा-हरि--चक्र कौ गयौ भूल उपखान ! ॥४५॥
कहँ गूलर-बासी यहै, कहँ वह बिस्व-बिहार !
कहँ यह पोखरि-मेंढुकी, कहँ वह पारावार ! ॥४६॥
बिन सींचे निज हीय तें सद्य रक्त-रस-धार ।
कहँ स्वधर्म की लहलही रही डहडही डार ॥४७॥
आयौ, बलि, रति-युद्ध तें भाजि, भीरु ! दै पीठि ।
अब काहे असि-बाल पै फिरत लगाये डीठि ॥४८॥

चली जमडाढ़ैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
लोह आँच जेठ के तरनि मान वै रहो ॥
ऐसे समै फौजें विचलाई छत्रसालसिंह,
अरि के चलाये पायँ बीररस च्वै रहो ।
हय चले हाथी चले संग छाँड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रहो ॥

[२]बुंदेलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल ।
दोनों वीरश्रेष्ठ छत्रसालों के सम्बन्ध में महाकवि भूषण कह गये हैं—

इक हाड़ा बूँदी धनी, मरद महेवावाल ।
सालत नौरँगजेब कों ये दोनों छतसाल ॥
वै देखौ छत्ता पता, ये देखौ छतसाल ।
वै दिल्ली के ढाल, ये दिल्ली ढाहनवाल ॥

पावसहीं में धनुष अब, सरित-तीरहीं तीर ।
रोदनहीं में लाल दृग, नौरसहीं में बीर ॥४६॥
टेक-टेक केते कहत, हठहूँ गहत अनेक ।
पै कहँ हठ हम्मीर की[1], कहँ प्रताप की टेक ॥५०॥
'सुई-नोक भरि भूमि, हरि ! नहिं दूँगो बिनुयुद्ध[2] ।'
धनि, दुर्योधन-पैज वह, यद्यपि धर्म-विरुद्ध ॥५१॥
नैननि नित किन राखिये, तिनकी पायन-धूरि ।
पूरि पैज जे मरद की भये युद्ध-मधि चूरि ॥५२॥
दिन-दूनी लागी बढ़ै बल-बीरज की माँग ।
छैल-चिकनियाँ हूँ रचै धीर-बीर के स्वाँग ॥५३॥
भर्यौ रक्त नहिं, जिन दृगनि देखि आत्म-अपमान ।
क्यों न बिधे तिन में, बिधे ! शूल बिषम बिष-बान ॥५४॥
नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिनपाँख ।
बिना जीव जिमि देह, तिमि बिना ओज यह आँख ॥५५॥
लखि सतीत्व-अपमानहूँ भये न जे दृग लाल ।
नींबू-नौन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल ॥५६॥
देखि दीन-दुर्दलनहूँ दहत न जाके अंग ।
ता कुचालि कौ भूलिहूँ कबहुँ न कीजै संग ॥५७॥
केते गाल फुलायकैं तमकि तरेरत नैन ।
लखि प्रचंड भुजदंड पै कछुवै करत बनै न ॥५८॥
लै असि-हल जोती मही, बोयौ सीस-सुधान ।
करि सुचि खेती जस लुन्यौ धनि रजपूत-किसान ॥५९॥

---

[1] तिरिया तेल हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार ।

[2] सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव ।

बोय सीस सींच्यौ सदा हृदय-रक्त रण-खेत।
बीर कृषक कीरति लही करी मही जस-सेत ॥६०॥
गये दिवस अब बिभव के, तजि दै बिषय-बिलास।
होय देस स्वाधीन कब, करि वा दिन की आस ॥६१॥
इन नैननि किन राखिये दुखित दूबरे दीन।
कीजै निज बलि-दान दै दलित देस स्वाधीन ॥६२॥
काम न ऐहैं अंत ये, बादि बजावत गाल।
वैही सीस चढ़ायहैं, जे गुदरी के लाल ॥६३॥
रण-अंगन अरि-अंगना अंग-सुहाग सँवारि।
तनु की ज्वाल सिरावतीं ज्वाल-माल तनु धारि ॥६४॥
सहमि तमकि भाजत भजत, तुरत अधीर सुधीर।
पीत अरुण परि जात मुख, लखि रण कादर बीर ॥६५॥
कहा मरोरत मूँछ उत बाँधि तुबक तरवार।
सेवत जा दरबार कों नर्तक भाँड़ लबार ॥६६॥
छिन छाँड़त, छिन गहत क्यों, रहत न एकहुँ ढङ्ग।
पल-पल पलटत नीच तै नित गिरगिट-ज्यौं रङ्ग ॥६७॥
जीवन-नवलनिकुंज रमि जो चाहौ रस-पान।
जाय छुड़ावौ प्रेम सों मृत्यु-मानिनी-मान ॥६८॥
देखत हीं रण-भूमि वै क्यों न जाहिं छुप गेह।
चित्र-लिखित लखि खड्ग जब थरथर काँपति देह ॥६९॥
भये न जो पढ़ि सत्यब्रत, सबल सूर स्वाधीन।
तौ विद्या-हित बादि धन, समय, शक्ति व्यय कीन ॥७०॥
देखि सती-ब्रत-भङ्गहूँ आवत जाहिं न रोष।
ता कादर के कदन में मानिय नैक न दोष ॥७१॥
कीजै किन कीरति अचल, दीजै दुकृत बिडारि।
क्यों न वीर-सुर-सरित में लीजै अंग पखारि ॥७२॥

कियौ राज सुर-राज ज्यौं जहाँ यवन-सम्राट।
सो वह दिल्ली हाट लौं लई लूटि ब्रज-जाट[1] ॥७३॥
स्वर्ण-दान हित कण तूँ, केशवराय-अनन्य!
अबुलफ़ज़ल-करि-केहरी बीरसिंह[2] नृप धन्य ॥७४॥
नहिं बद्दल दल-बल यहै, तड़ित न यह किरपान।
नहिं घन गाजत, गहगहे बाजत तुमुल-निसान[3] ॥७५॥
है पानिप तरवार कौ कौन उतारनहार?
कौन उखारनहार है मरद-मूँछ कौ बार ॥७६॥
धन्य बनिक जो लै तुला, बैठ्यौ समर-बजार।
अरि-मुंडनु कौ धर्म सों कियौ बनिज-ब्यौपार ॥७७॥

---

[1] भरतपुराधिप वीर-वर सूरजमल के पुत्र महाराज जवाहरसिंह जी द्वारा की हुई दिल्ली की इतिहास-प्रसिद्ध लूट।

[2] देखो टिप्पणी—तीसरा शतक, ६८ दोहा।

[3] निम्नलिखित कवित्त के आधार पर—

बद्दल न होहिं दल दच्छिन घमंड माहिं,
घटाहूँ न होहिं दल सिवाजी हँकारी के।
दामिनी दमंक नाहिं, खुले खग्ग बीरन के,
वीर सिर छाप लखु तीजा असवारी के॥
देखि-देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि-उझकि उठैं बहत बयारी के।
दिल्ली मतिभूली कहै बात घन घोर घोर,
बाजत नगारे जे सितारे गढ़-धारी के॥

—भूषण

कटत खटाखट मुंड, त्यों पटत रुंड पर रुंड।
जहँ-तहँ हल्दीघाट पै लहरत लोहित-कुंड ॥७८॥
तौलगिहीं तूँ गरजि लै गो घातक ! बनमाहिं।
जौलगि मत्त मृगेन्द्र ! यह दबी लबलबी नाहिं ॥७९॥
पेशकब्ज, दढ़ गुर्ज, त्यों बरछी, बाँक कटार।
हैं आभूषण बीर के तुबक तीर, तरवार ॥८०॥
आँजि ओज-आँजन दृगनि दई अनी बिचलाय।
क्यों न तोहिं रण-बाँकुरे ! मसक गयन्द लखाय ॥८१॥
आसव एतो ओज कौ लीजै दृगनि उँड़ेलि।
मर्दि मीजिये मसक ज्यौं रिपु-गयन्दहूँ पेलि ॥८२॥
शरणागत, मद-मत्त, तिय, क्लीब, निरस्त्र, अनाथ।
इन्हें घालिबे नहिं कबौं मरद गठायौ हाथ ॥८३॥
हृदय-जीत-सी जीत नहिं, भरम-भीति-सी भीति।
धर्म-नीति-सी नीति नहिं, कृष्ण-प्रीति-सी प्रीति ॥८४॥
सेवैं हम गुरु-खालसा, है न लालसा और।
वाह गुरु की मेहर सों फते होय सब ठौर ॥८५॥
रण-अन्हान सों नहिं तुलैं सहसतीर्थ के न्हान।
अभय-दान पै वारिये अमित यज्ञ के दान ॥८६॥
लिखे हमारे भाल पै अंक न अर्थ-अधीन।
ज्यौं पानीपत पै भये हम पानी-पत-हीन ॥८७॥
'आये रण में जूझिकैं लाल लाड़िले काम।"
सुनि, छाती फूली, फटी गई जननि सुर-धाम ॥८८॥
सुमन-सेज सर-सेजही, रण रति रीति रसाल।
सुभट-लाल-हित-हित रँगी रमण-बाल करबाल ॥८९॥
कारण कहुँ, कारज कहूँ, अचरज कहत बनै न।
असि तौ पीवित रकत, पै होत रकत तुव नैन ॥९०॥

वर्म चर्म असि तूण तनु सजे सूर सरदार।
वह सब मुख मेचक किये वा दिन बिन हथियार ॥९१॥
मुक्ति-हेतु इक करत तप, अपर दान, मख, ध्यान।
पै छिति छत्रहिं छाँड़ि रण नाहिंन साधन आन ॥९२॥
सुनै कवित पजनेसके जिनसों मंजुल, मन्द।
तिन श्रवनन सों अब कहा सुनिहै भूषण-छन्द? ॥९३॥
कथनी तौ औरै कछू, पै करनी कछु और।
हम-से कादर कूरहूँ बनत सूर-सिरमौर ॥९४॥
क्षात्र-धर्म, यश-कौमुदी, कृष्ण-रूप-रुचि-राग।
होउ हरे! संगम सदा यहै सुहाग-प्रयाग ॥९५॥
मन-मोहिनि वै सतसई हिरनी-सी सुकुवाँरि।
कहा रिझैहै रसिक-मन यह सिंहिनि भयकारि ॥९६॥
नहिं रस या सतसई में, नाहिं सुपद-लालित्य।
भूषितहूँ दूषित भयौ परसि याहि साहित्य ॥९७॥
वै कुरंगिनी सतसई, सबै राखिहैं लालि।
को लैहै सिर बिपत मो भूखी बाघिन पालि ॥९८॥
उर-प्रेरक श्रीहरि भये, भई प्रगटि लाहौर।
सतसइया पूरन भई पद्मावती[२] सुठौर ॥९९॥
चैत्र-सुदी-सुभपंचमी, वेद सिद्धि निधि इन्दु।
करी समापत सतसई हरी सुमिरि गोविन्दु ॥१००॥

तीज-परब सौतिन सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे-मुँह करी इहीं मरगजैं चीर॥ —बिहारी

[२]पन्ना नगरी का प्राचीन नाम; परिणामी पंथवाले तो पन्ना को आज भी 'पद्मावती' पुरी कहते हैं।